डा० हरदेव बाहरी एम ए, पी-एच डी, डी लिट

चुने हुए एकांकी नाटक

सम्पादक

डा. हरदेव बाहरी, एम. ए., एम. ओ. एल.,

पी-एच. डी , डी. लिट्, शास्त्री,

भूतपूर्व प्रोफ़ेसर, एचिसन कालेज, लाहौर।

प्रकाशक

मेहरचन्द्र लछमणदास

संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता

गली नन्हेखां, कूचा चेलां,

दरियागंज, दिल्ली।

[सन् १९४९] [मूल्य ३)

नाटक-सूची

भूमिका

हिन्दी मे एकाकी नाटक पश्चिम से आया है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि सस्कृत मे अङ्क, भाण, व्यायोग, आदि नाटको के प्रकार ऐसे है जिनमें केवल एक ही अङ्क होता है। भास का 'उरु-भङ्ग' इसका सुन्दर उदाहरण है। परन्तु भास के बाद यह परपरा बद-सी हो गई। सारे सस्कृत साहित्य में कुछ इने-गिने एकाकी नाटकों का उल्लेख मिलता है। साधारण रूप में प्रवृत्ति बड़े-बड़े नाटक लिखने की रही है। हिन्दी का एकाकी, सस्कृत रीति से नहीं पाश्चात्य शैली से ही प्रभावित हुआ है।

एकाकी नाटक में एक अक होता है और एक या एक से अधिक दृश्य होते है। यह जरूरी नहीं कि एकाकी नाटक छोटा ही हो, वह बड़ा भी हो सकता है। उस में एक ही घटना, परिस्थिति अथवा समस्या होती है। लम्बे-लम्बे कथोपकथन, वर्णन-वैचित्र्य, कथा-विकास, चरित्र-विकास, गौण घटनावली, इत्यादि बातो का उस में स्थान नहीं होता। उसकी कथावस्तु जटिल नहीं होती—उसमें जीवन का क्रमबद्ध विवेचन तो होता नहीं—बस एक ही महत्त्वपूर्ण घटना, एक ही विषय उसमें रहता है। एकता में एकाग्रता होती है, और प्रभाव गहरा पड़ता है। एकाकी में वेग-सम्पन्न प्रवाह होता है। नाटककार को एकाकी में अधिक चातुरी, अधिक कला-कौशल का प्रमाण देना होता है।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से एकाकी नाटकों के पाच भेद किये जा सकते हैं—

१ समस्यामूलक एकाकी—जिसमें जीवन की किसी समस्या का वर्णन होता है और कभी-कभी उसके हल का निर्देश भी किया जाता है।

२. धार्मिक एकाकी, जिसमें धार्मिक सिद्धातों का प्रचार अथवा पौराणिक अवतारों की महिमा होती है।

३ सामाजिक एकांकी—जिसमें सामाजिक रीति-रिवाजों पर विवेचना की जाती है।

४ ऐतिहासिक एकांकी—जिन में इतिहास की किसी घटना का वर्णन होता है।

५ व्यंग्यात्मक एकांकी—जो कोई व्यंग्य लिये हो। इसमें लेखक किसी घटना, किसी देश के रीति-रिवाज, किसी व्यक्ति की आदत, आदि पर कटाक्ष करता है। प्रहसन को हम इसके अन्तर्गत समझ सकते हैं। कई बार प्रहसन का कोई उद्देश्य नहीं होता सिवाय इसके कि पढ़ने वालों और देखने वालों की दिल्लगी हो। परन्तु कुछ कलाकार कोई सामाजिक, राजनीतिक अथवा अन्य सुधार की भावना लेकर भी प्रहसन लिखते हैं।

हिन्दी में इन सब विषयों के नाटक हैं।

शैली अथवा टैक्नीक के आधार पर प्रोफेसर नगेन्द्र ने कुछ प्रकारों का उल्लेख किया है।

१ संवाद या संभाषण—इन संवादों का पहले स्कूलों में बड़ा रिवाज था। दो लड़के एक उपदेशात्मक विषय, सिद्धांत कथा अथवा घटना के दो पक्ष लेकर वार्तालाप करते थे और शुरू-शुरू में मत-भेद रखते हुए, कहीं-कहीं सहमत होते हुए और अन्त में बिल्कुल एक-जबान होकर उस विषय, अथवा सिद्धांत का प्रतिपादन करते थे। हिन्दी में प० हरिशंकर शर्मा के 'चिड़ियाघर' में कुछ ऐसा संवाद है। परन्तु संवादात्मक नाटक में नाटकोचित चढ़ाव उतार नहीं मिलता।

२ एकपात्री नाटक—इस में एक व्यक्ति रंगमंच पर आकर अभिनय करता रहता है। वह कभी चित्र आदि को देखकर, कभी हवा में ही किसी व्यक्ति से बातें करता हुआ, कभी कल्पना से ही घटना को साक्षात् करके, कभी स्वयं प्रश्न करके और स्वयं उसका उत्तर देकर वार्तालाप करता हुआ नाटक करता है। ऐसा नाटक लिखना अच्छे सिद्धहस्त एकांकीकार का काम है। हिन्दी में सेठ गोविंददास के नाटकों को छोड़कर बहुत कम एकांकी इस शैली में लिखे गये हैं।

३ फैंटेसी—इसमें लेखक किसी काल्पनिक घटना का स्वच्छंद स्वप्नमय ढग से चित्रण करता है, और कोई परिणाम अथवा शिक्षा निकालने का प्रयत्न नही करता। किसी परी की कहानी को यदि नाटक का रूप दे दिया जाय तो वह सुन्दर फैंटेसी होगी। हिन्दी में डा० रामकुमार वर्मा का "बदला की मृत्यु" अच्छी फैंटेसी है।

४ फीचर—इसमें किसी विषय विशेष पर प्रकाश डालने के लिए उससे सम्बद्ध बातों को नाट्यरूप में पेश किया जाता है। किसी निबंध को दृश्यों के रूप में रखा जाय तो वह फीचर कहलायगा। रेडियो पर कई अच्छे फीचर आ चुके हैं।

५ रेडियो-नाटक—रेडियो पर आये दिन बीसियों ऐसे एकांकी नाटक आते हैं जो रंगमंच पर तो नही आ सकते क्योंकि उनमें दृश्य-अंश बहुत कम होता है, परंतु रेडियो का टैकनीक उसमें नाटकीय विधान ला देता है। यह सुनने की चीज है। श्रोता अंधेरे में भी अभिनय की कल्पना कर लेता है। हिन्दी मे श्रीहरिकृष्ण प्रेमी, प० उदयशंकरजी भट्ट, डा० रामकुमार वर्मा और इस संग्रह के सम्पादक के कुछ नाटक ब्रॉडकास्ट हो चुके हैं। पुस्तक रूप में अभी ऐसे नाटक बहुत कम प्रकाशित हुए हैं।

६ स्वस्थ एकांकी—इसका विवरण हम पहले ही दे चुके हैं। ऐसे नाटक में एक से अधिक दृश्य होते हैं। विषय और समय की किफायत की जाती है। प्रभाव और वस्तु का ऐक्य रहता है। इस प्रकार के अनेक नाटक हिन्दी में हैं। इस संग्रह में सक्सेना साहब, प्रेमीजी और सम्पादक के नाटक इसी सुनिश्चित शैली के है।

७ झांकी—यह एकांकी नाटक का नवीनतम रूप है। इसमें केवल एक दृश्य होता है और स्थान तथा समय का ऐक्य रहता है। डा० रामकुमार वर्मा और प० उदयशंकरजी भट्ट के नाटक उत्तम उदाहरण हैं जो इस संग्रह में दिये गये है।

हिन्दी में एकांकी नाटकों का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। यों तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण

भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और राधाकृष्णदास ने पिछली शताब्दी में ही ऐसे रूपक लिखे थे जो आजकल के एकांकियों से मिलते जुलते हैं, परन्तु उन्हें हम आदर्श एकांकी नहीं कह सकते। हिन्दी एकांकी का प्रादुर्भाव जयशंकर प्रसाद के 'एक घूंट' से होता है। पिछले १५-२० वर्षों में एकांकी का बहुत विकास हुआ है। डा० रामकुमार वर्मा, श्री भुवनेश्वर प्रसाद, सेठ गोविन्ददास, पं० उदयशंकर भट्ट, श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, श्री सद्गुरु शरण अवस्थी, पं० चतुरसेन शास्त्री, श्री शम्भुदयाल सक्सेना, श्री हरिकृष्ण प्रेमी, मि० उपेन्द्र नाथ अश्क, श्री भगवतीचरण वर्मा और सुदर्शन जी प्रसिद्ध एकांकीकारों में हैं।

इस संग्रह के लिए नाटकों का चुनाव करने में हमें कई महीने लग गये हैं। चुनाव के समय हमें कई बातों को देखना था—नाटक की भाषा ऐसी हो जो शिक्षार्थियों के लिए बहुत कठिन न हो, विषय ऐसे हों जिनका प्रभाव नवयुवकों और नवयुवतियों पर अच्छा पड़े, भाव ऐसे शिष्ट हों जिनसे लड़कों और लड़कियों के चरित्र-गठन में सहायता हो, इत्यादि, इत्यादि। इस दृष्टि से हमने सारे एकांकी साहित्य को पढ़ा, हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं को देखा। भुवनेश्वरप्रसाद के नाटकों का सन्देहवाद और दार्शनिक तत्त्व हमारे विद्यार्थियों के उपयुक्त न था। इस अवस्था के बच्चे आशावादी होते हैं—उनमें भुवनेश्वरप्रसाद के सन्देहवाद के विचार फैलाकर उन्हें समय से पहले बूढ़ा बना देना हमने उचित नहीं समझा। गणेशप्रसाद द्विवेदी के नाटकों में स्त्री-पुरुष के प्रेम की चर्चा थी। हम नहीं चाहते थे कि समय से पहले बच्चों को प्रेम का पाठ पढ़ाया जाय। अश्क के नाटकों में हमें वह गहराई नहीं मिली जिस से प्रभावोत्पादन होता है। सेठ गोविन्ददास के नाटकों में सर्वसाधारण का जीवन नहीं था, उनमें था ऊँचे घरानों का जीवन—उसकी अपील भी जोरदार न जान पड़ी। उनके एकपात्री नाटक अच्छे थे परन्तु उनको समझना हमारे विद्यार्थियों के लिए कठिन होता। कई नाटक ऐसे मिले जिनका विषय तो अच्छा था, परन्तु उनकी भाषा क्लिष्ट थी और कई ऐसे थे जिनकी भाषा तो सरल थी परन्तु भाव ऐसे थे जिन तक

विद्यार्थियों की बुद्धि नहीं पहुँच सकती। हमने कई उत्तम नाटकों को इस लिए भी त्याज्य समझा कि उनमें शृंगार-रस था। हमने एकाकी नाटक-साहित्य को विद्यार्थियों के ही दृष्टिकोण से देखा है।

इस सग्रह की कुछ विशेषताए ये हैं—

(१) इन नाटकों में सब प्रकार के विषयों पर विचार हुआ है—श्रीशम्भुदयाल सक्सेना तथा आचार्य श्री चतुरसेनजी के नाटक पौराणिक है, भट्टजी का सास्कृतिक, प्रेमी जी का सामाजिक, डा० वर्मा का समस्यामूलक, और सम्पादक का अपना नाटक ऐतिहासिक है। इन नाटकों में सुखात भी हैं और दु खात भी। इनमें स्वस्थ एकाकी भी हैं और झाकिया भी। इनमें भारतीय शैली के नाटक भी हैं और अगरेजी शैली के भी।

(२) नाटकों का क्रम विषय और भाषा की दृष्टि से रखा गया है। पहले सुगम और पीछे कुछ कठिन। पहले और पाचवें नाटक के विषय तो विद्यार्थियों के जाने हुए है, परन्तु पहले की भाषा पाचवें से सरल है। इसलिए उसे पहला स्थान दिया गया। इसी प्रकार दूसरे नाटक से तीसरे की और तीसरे से चौथे की भाषा और विषय-योजना कुछ कठिन हैं। इस क्रम से विद्यार्थियों को बहुत लाभ होता है और साहित्य के पढ़ने मे प्रोत्साहन मिलता है।

(३) नाटकों की भाषा साहित्यिक और मुहावरेदार, शुद्ध और व्याकरण-सगत है। पहला और पाचवा तथा छठा नाटक साहित्यिक भाषा के उत्तम उदाहरण हैं, दूसरा, तीसरा और चौथा नाटक चलती हुई भाषा में है।

(४) कठिन शब्दों और उनके अर्थों का कोष पुस्तक के अन्त में दिया गया है।

(५) इन नाटकों मे कोई शब्द, वाक्य, कोई दृश्य ऐसा नहीं है जिस का तरुण अवस्था के लड़के लड़कियों पर बुरा प्रभाव पड़े।

(६) प्रत्येक नाटक के शुरु में नाटककार का परिचय और नाटक की

कथा का संक्षेप दिया गया है। इन से विद्यार्थियों को नाटक समझने में तो सुगमता होगी ही उनमें नाटककारों का अन्य साहित्य पढ़ने की भी उत्सुकता जगेगी।

जिन नाटककारों की कृतियाँ इस संग्रह में ली गई हैं उनका हम बहुत बहुत धन्यवाद करते हैं।

वल्कल

नाटक के पात्र

दशरथ	अयोध्या के राजा
कैकयी	दशरथ की स्त्री, राम की विमाता
राम	अयोध्या का युवराज
लक्ष्मण	राम के छोटे भाई
सीता	राम की स्त्री
वशिष्ठ	रघुवंश के कुलगुरु
सुमन्त	दशरथ का मन्त्री
मंथरा	कैकेयी की विश्वासपात्री दासी

परिचय

'वल्कल' के लेखक श्री शम्भुदयाल सक्सेना सुविख्यात कवि, नाटककार, उपन्यास-लेखक तथा आलोचक हैं। आप बीकानेर के सेठिया कालेज में हैडमास्टर हैं। बड़े मिलनसार और सज्जन पुरुष हैं। 'साधनापथ' 'वल्कल' 'गंगाजली' आदि कई नाटक आपके प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त आपने बच्चों के लिए बहुत सुन्दर तथा उपयोगी साहित्य लिखा है।

भाषा की सरलता और विचारों की स्वच्छता आपकी कृतियों के विशेष गुण हैं।

इस नाटक की कथा रामायण से ली गई है। राजा दशरथ ने रामचन्द्रजी को राजतिलक देने की घोषणा कर दी। सारी अयोध्या में आनन्द-मंगल होने लगा, परन्तु मन्थरा दासी की बहकाई हुई कैकेयी गुस्से में भर कर पड़ रही। जब दशरथ कोप-भवन में पहुँचे और कैकेयी से उदासी का कारण पूछा तो उसने राजा को याद दिलाया कि आप मुझे दो वर पहले दे चुके हैं, आज अपना वचन पूरा कीजिए और भरत को राजगद्दी तथा राम को १४ वर्ष का वनवास दीजिए। दशरथ ने रानी को बहुतेरा समझाया पर वह टस से मस न हुई। अन्त में उन्होंने अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणप्यारे राम को वन भेजना स्वीकार कर लिया। परन्तु राम से वियुक्त होने के दारुण विचार से वे मूर्च्छा खाकर गिर पड़े।

जब तड़का हुआ तो रामचन्द्र पिता जी को प्रणाम करने इधर ही आ निकले। यहां आकर कैकेयी द्वारा वनवास जाने का आदेश

मिला। वे प्रसन्न हुए। जब सीताजी को मालूम हुआ तो वे भी तैयार होने लगीं। लक्ष्मण भी राम के साथ जाने का आग्रह करने लगे। राम ने बहुत रोका पर वे मानते ही न थे। माता कौशल्या से आशीर्वाद पाकर वे फिर दशरथ के पास आये। वहां कैकेयी ने उन्हें चीर-वल्कल पहना कर वन को भेज दिया। महाराज दशरथ रोने लगे और अचेत हो गये।

नाटककार ने जगह जगह पाठक को रुलाया है। सारी कथा करुणरस से भरी है। बालकों के लिए इस में अमूल्य शिक्षा है।

पहला दृश्य

स्थान—अयोध्या का राजभवन

समय—रात

[दशरथ धीरे-धीरे महल में प्रवेश करते हैं]

दशरथ—आज आकाश दिवाली मना रहा है। धरती पर भी दिवाली है। राम के राजतिलक में सबका सहयोग है।—किन्तु राजप्रासाद का यह भाग अँधेरा क्यों पड़ा है? (और आगे बढ़कर) अरे, कोई है?

(दासी का प्रवेश)

दासी—इधर से, महाराज इधर से।

दशरथ—लगता है सारी दुनियाँ का अँधकार यहाँ आकर जमा हो गया है।

दासी—इधर से महाराज।

दशरथ—यह कैसा उलटा प्रबंध है?

दासी—(हाथ जोड़े खड़ी रहती है।)

दशरथ—बाहर आँख उठाकर देखो। तारों-भरा आकाश पृथ्वी पर उतर आया है।

दासी—(उसी तरह हाथ बाँधे है।)

दशरथ—मालूम नहीं, कल राम का अभिषेक है?

दासी—(स्वीकारात्मक सिर हिलाती है।)

दशरथ—कह दो, अभी कह दो—महलों को जगमगा दें। ओह! कैसा उल्टा प्रबंध है!

दासी—(बाहर जाने लगती है।)

दशरथ—राजाज्ञा की इतनी अवहेलना! प्रबंध की इतनी त्रुटि! अच्छा बुलाओ सुमन्त को। मैं पूछूँगा।

(रानी कैकेयी का प्रवेश, वेशभूषा अस्तव्यस्त, आँखों में लाली, मुख पर आवेश। दासी चौंक कर चली जाती है।)

कैकेयी—महाराज की भूल है।

दशरथ—मेरी भूल है! कैसे? मैंने तो सारे नगर, सारे राज्य में अभिषेकोत्सव मनाने के लिए कह दिया था।

कैकेयी—सारे राज्य के लिए कहा होगा।

दशरथ—पर देखता हूँ कि—

कैकेयी—महाराज देखना चाहते हैं कि अन्तःपुर भी राजाज्ञा से शासित क्यों नहीं होता?

दशरथ—(हँसते और रानी कैकेयी के मुख की ओर देखते हैं।)

कैकेयी—यह राजाज्ञा की अवहेलना नहीं है, महाराज।

दशरथ—(हँसते हुए) राजाज्ञा न सही अन्तःपुर की अधीश्वरी की आज्ञा सही। पर यह आज्ञा किस लिए ?

कैकेयी—यह बताने के लिए कैकेयी वाध्य नहीं। वह कोई लौंडी-बाँदी नहीं। वह कोई धर्षिता-अपहृता नहीं। वह राजनन्दिनी है, राजरानी है, और है—और है राज—

दशरथ—अरे! तुम तो कुपित हो रही हो ?

कैकेयी—महाराज जो चाहें कह सकते हैं।

दशरथ—पर शायद तुम्हें मालूम नहीं कि कल तुम्हारे राम का अभिषेक है, और उसी उत्सव मे यह दीपावली हो रही है ।

कैकेयी—मेरे राम का अभिषेक, कल सवेरे—और महाराज ने उसकी सूचना तक देने की आवश्यकता नहीं समझी ।

दशरथ—तो क्या सचमुच कुपित हो गईं, रानी ? मुझे मालूम न था कि तुम बुरा मानोगी । तुम्ही बराबर पूछती थीं कि राम को युवराज कब बनाओगे ? तुम्हारी इच्छा के विपरीत कुछ होता तो पूछने की आवश्यकता पड़ती । इसी से, इसी से—

कैकेयी—ठीक ही तो हुआ ।

दशरथ—तो अपनी आज्ञा वापस लो । महलों मे दीपमाला जगने दो । सारी दुनियाँ जिस आलोक मे नहा रही है उस आलोक से राजप्रागण को वचित न करो ।

कैकेयी—राजा की आज्ञा से राजरानी की आज्ञा कुछ कम नहीं होती है, महाराज ।

दशरथ—राजरानी के सामने राजा की आज्ञा कुछ मूल्य नहीं रखती, ऐसा कहो, कैकेयी ।

कैकेयी—यह पुरुषों का शिष्टाचार मात्र है । इसमे कुछ सार होता तो महाराज की ओर से अकारण आज्ञा वापस लेने का आदेश न होता । कहो, राजरानी कुछ नही । इसका आदेश कुछ नहीं । राजाज्ञा ही सर्वोपरि है । अन्त पुर मे भी आज से राजाज्ञा चलेगी । कहो, कहो, कहते क्यों नहीं, महाराज ?

दशरथ—बहुत हो चुका, प्रिये ! जो सदा तुम्हारी इच्छा का दास है उसे ऐसा दोष तो न दो । अन्त पुर की कहती हो, तो

मैं तुम्हें लिख देता हूँ। आज से राज्यभर में राजरानी कैकेयी की आज्ञा ही राजाज्ञा समझी जाएगी। लो, इस पर अपने हाथ से राजमुद्रा अंकित करो।—परन्तु, यह आज्ञा वापस लेने का अनुरोध 'अकारण' मत करो। (पत्र आगे बढ़ाते हैं।)

कैकेयी—मुझे महाराज पर विश्वास नहीं।

दशरथ—क्या कहा ? विश्वास नहीं ! सूर्यवंशी राजा दशरथ के वचन पर विश्वास नहीं ? राजरानी कैकेयी को अपने स्वामी पर विश्वास नहीं ?—मेरे कान क्या सुन रहे हैं, रानी ?

कैकेयी—मैं सच कहती हूँ, महाराज।

दशरथ—(आकाश की ओर मुँह करके) सुनो, आकाशचारी नक्षत्रो ! सुनो। रानी कैकेयी क्या कहती है ? सुनो, निशानाथ ! तुम भी सुनो। रघुवंश की राजवधू क्या कहती है ?

कैकेयी—कैकेयी कभी प्रलाप नहीं करती, महाराज। आप व्यर्थ उत्तेजित होते हैं।

दशरथ—और रानी। दशरथ भी किसी के प्रति अविश्वस्त नहीं।

कैकेयी—कैसे कहूँ ?

दशरथ—देवताओं से पूछो। मनुष्यों से पूछो। उन अनार्य राक्षसों से पूछ देखो।—इनके अतिरिक्त जिससे इच्छा हो पूछ लो।

कैकेयी—आपने को छोड़कर और दुनियाँ से पूछने की मुझे जरूरत नहीं।

दशरथ—शांतम् पापम्, शांतम् पापम्। क्या कहती हो प्रिये ? रघुवंशी दशरथ अपनी स्त्री के प्रति अविश्वस्त। (कानों पर हाथ रखते हैं)

कैकेयी—सोच देखिये राजन्।

दशरथ—(मलिन और विचारमग्न हो जाते हैं।)

कैकेयी—कुछ याद आ रहा है?

दशरथ—नहीं, कुछ भी तो नहीं।

कैकेयी—बडे आदमी बडी-बडी बातों को कहकर आसानी से भुला सकते हैं। इसी मे तो उनकी बड़ाई है।

दशरथ—मै आज आनन्द मे पागल हो रहा हूँ। मुझे कुछ सुध नहीं है। तुम्हीं याद दिलाओ न एक बार!

कैकेयी—यही होगा। यही होगा, महाराज। मै ही याद दिलाऊँगी।

दशरथ—हाँ-हाँ, तब मै भी बताऊँगा कि तुम्हारा अविश्वास व्यर्थ है।

कैकेयी—ऐसा हुआ तो मुझे असीम हर्ष होगा, नाथ।

दशरथ—तो कह डालो।

कैकेयी—एक नहीं, दो-दो वरदानों का वचन देकर आपको इस तरह मुकर जाना क्या शोभा देता है?

दशरथ—ओहो। याद आया। याद आया। रानी, मै तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। आज कैसे सुन्दर मुहूर्त्त मे तुमने उस घटना की याद दिलाई।

कैकेयी—तो क्या पुरस्कार मे केवल धन्यवाद पाकर रह जाना होगा?

दशरथ—इस पुण्य मुहूर्त्त मे मै कण-कण के लिए ऋण-मुक्त हो जाना चाहता हूँ। तुम्हारी दूरदर्शिता की किस मुख से प्रशंसा करूँ? तुमने कैसा मंगलमय समय चुना है!—तुम आज दो की जगह चार वरदान माँग लो।

कैकयी—(मुस्कराती है ।)

दशरथ—हँसो नहीं, प्रिये। आज सचमुच मुँह-मांगे वरदान माग लो। राम के अभिषेकोत्सव के समय मुझे किसी को कुछ भी अदेय नहीं है।—फिर तुम तो—

कैकेयी—रहने दो। आपको कष्ट होगा।

दशरथ—बिलकुल नहीं। तुम माँग लो। मनमाना माग लो।

कैकयी—मैं जो कहती हूँ।

दशरथ—और मैं भी तो कहता हूँ। तुम माँग लो प्राणाधिके, मेरा भी अनुरोध मानो। इतने हर्ष का समय जीवन मे फिर कब आयगा?—मांगतीं क्यों नहीं तुम्हें राम की शपथ है माग लो।

कैकेयी—महाराज की यही इच्छा है तो—तो मैं माँगती हूँ कि अभिषेक मेरे भरत का हो।—और, और राम चौदह वर्ष तक वल्कल पहन कर वनवास करें।

दशरथ—ऐं ऐं। क्या कहा? क्या कहा? रानी कैकेयी। प्रिये।

(जीभ लड़खड़ाती है)

कैकेयी—बस।

दशरथ—भरत की माँ, इतना कटु-कठोर परिहास मै तुम्हारे—मुँह से सुन रहा हूँ।

(गला सूखता है)

कैकेयी—यह परिहास नहीं है राजन, सत्य है।

दशरथ—सत्य है। कौन कहता है?

कैकेयी—अभागे राजकुमार की दुखिया माता कहती है।

दशरथ—भरत की माता, जरा मेरे मुँह की ओर देखकर फिर एक बार कहो तो जानूँ।—नहीं, तुम कभी न कह सकोगी।

कैकेयी—मैं तो कह चुकी। मै बार बार क्यों कहूँगी ?

दशरथ—तो मैं मान लूॅ कि यह परिहास नहीं है ?

कैकेयी—महाराज इसे परिहास कहकर उडा दे सकते हैं, पर कैकेयी ऐसे समय हँसी नहीं करती।

दशरथ—परिहास कहकर उडा दूँ, और नहीं तो क्या करूँगा ? ये क्या वरदान है ? नारी। ओह, निर्मम नारी।

कैकेयी—मै भी चाहती हूँ कि महाराज परिहास कहकर मेरी बातें उडा दे। तब आप अपने धवल यश का झंडा इतना ऊँचा कभी न उड़ा सकेंगे। मैं हवा के साथ दिगन्त मे आपकी इस दानवीरता के गीत गुॅजा दूॅगी। मैं वन की डाली-डाली पर आप की प्रशस्तियाॅ लिखकर छोड जाऊँगी। मैं पशु-पक्षियों तक आपकी यह यश-गाथा पहुँचा दूँगी। बिजली की तूलिका से बादलों पर आपकी सत्यवादिता का यह चित्र अकित कर दूँगी।

दशरथ—कैकेयी। तुम पिशाचिनी हो।

कैकेयी—राजकुमार होकर भी मेरा भरत जब पथ का भिखारी है तो राजरानी होकर मेरे पिशाचिनी होने मे क्या शेष है ? परन्तु, महाराज, आप भी अब यह झूठा आडवर रख न सकेंगे। आपके कपट-प्रेम की आज परीक्षा हो जायगी।

दशरथ—भरत की माॅ। आज तुम्हें हो क्या गया है ?

कैकेयी—महाराज निश्चिन्त रहें। मैं सब तरह शान्त और स्वस्थ हूॅ। मैं आपसे केवल दो-टूक उत्तर चाहती हूॅ 'हाॅ या न।' केवल 'हाॅ या न।'

दशरथ—हाॅ या न ?

कैकेयी—'हाँ' का मतलब है आपके सारे आयोजन का धूल में मिल जाना, रानी कौशल्या की आशाओं के मंदिर का ढह जाना और प्राणाधिक राम का विछोह। 'न' से सब संकट दूर होते हैं। केवल आपके यश में एक धब्बा लग जायगा। सो क्या चाँद में कलंक नहीं होता?

दशरथ—कैकेयी।

कैकेयी—आपके 'न' कह देने से मैं अपना क्या कर सकूँगी? मेरा भरत भी क्या करेगा?

दशरथ—रानी तुम चाहो जो कुछ कहो पर मेरे भरत को इसमें मत सानो। वह भोला राम का भक्त—

कैकेयी—बस, बस महाराज। रहने दीजिये। मैं जानती हूँ आप भरत को क्या समझते हैं। तभी न उसे ननसार में डाल रक्खा है। राम के राज्याभिषेक के समय भी आप जिसे घर बुलाना जरूरी नहीं समझते उस भरत को आप कितना चाहते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है।

दशरथ—भगवान जानते हैं। (ठंडी साँस लेते हैं)

कैकेयी—भगवान् तो जानते ही हैं। आज मैं भी वही जानना चाहती हूँ।

दशरथ—(आह भरकर) मुझे निश्चय हो रहा है कि तुम अवश्य जानोगी।

कैकेयी—इस अवसर को मैं जाने नहीं दे सकती, महाराज।

दशरथ—वही दीखता है। रघुवंश का विशाल वृक्ष तुम्हारी आँधी में न जाने कहाँ जाकर रहेगा?

कैकेयी—कुछ चिन्ता नहीं। मैं केवल उत्तर चाहती हूँ। मुझे इस समय और कुछ नहीं दीखता है।

दशरथ—हा ! राम ! (धीरे धीरे बैठ जाते हैं)

कैकेयी—इतने व्याकुल होने की कौन बात है ? आप इन्कार कर दें। बस ! पर यह नहीं हो सकता, महाराज, कि आप अपने वचन से फिर भी जाएं और सत्यवादी भी कहलाएं।

दशरथ—रानी ! तुम समझती हो राम को राज्य का मोह है ? छि'—तो तुम उसे नहीं जानतीं। यदि उसे मालूम हो जाय तो वह ऐसे सैकड़ों राज्य छोड़ कर चला जाय। यदि तुम जरा पहले कहतीं तो मैं यह सब करता ही क्यों ? फिर भी तुम्हारी यही इच्छा हो तो भरत का अभिषेक कर दूँगा। परन्तु-परन्तु दूसरी बात, ओह ! दूसरी बात कितनी कठोर है ! क्या अपने प्यारे राम के लिए वनवास का प्रस्ताव तुम वापस न लोगी ?

कैकेयी—मैं और कुछ नहीं जानती।

दशरथ—परन्तु इतना जान लो कि राम का वनवास और मेरा परलोकवास साथ साथ होंगे।

कैकेयी—(निरुत्तर रहती है)

दशरथ—यदि तुम मेरी मौत का आवाहन करती हो, तो करो। मैं तैयार हूँ।

कैकेयी—(निरुत्तर रहती है)

दशरथ—(ठंडी सांस खींचकर) राम, प्यारे राम, हाय ! तुम सवेरे उठकर क्या देखोगे ? राज्य देते देते मैं तुम्हें क्या दे रहा हूँ ? तुम्हारे पिता का कैसा सुन्दर प्यार है ? प्रजा कल राम का कैसा सुन्दर अभिषेक देखेगी ?—ऐ नीले आकाश के उज्ज्वल नक्षत्रो ! तुम अस्त मत होना। सूर्यवंश के पितामह आदित्य ! तुम कभी उदय मत होना। परमात्मा करे दुनियाँ इस समाचार को सुनने ही न पाए।

कैकेयी—इस विलाप से तो अच्छा है आप मुझे मना कर दें। मैं यह स्वांग देखना नहीं चाहती।

दशरथ—रानी! बबूल बोकर आमों की आशा करना मेरे लिए व्यर्थ है। आज मैं यह समझ रहा हूँ।

कैकेयी—समझ रहे हैं परन्तु मोह नहीं छोड़ सकते।

दशरथ—रानी! तुम मेरे प्राण चाहती हो वे मिलेंगे। परन्तु मेरे सामने से हट जाओ। मैं तुम्हारा मुँह देखना नहीं चाहता। हा, राम! (गिर पड़ते हैं, आँखें मूँद लेते हैं।)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या का राजमहल

समय—प्रातःकाल

[दशरथ मूर्च्छित पड़े हैं। एक ओर कैकेयी बैठी है। राम, सुमन्त और वशिष्ठ एक एक कर आते हैं]

राम—पिताजी! पिताजी!

दशरथ—(आँख खोलकर राम को देख लेते हैं, फिर बंद कर लेते हैं।)

राम—बहुत कष्ट मालूम होता है।

सुमन्त—विशेष कष्ट है।

वशिष्ठ—अतीव कष्ट है।

राम—क्या कारण है? रात ही रात में इतना कष्ट कैसे हो गया? मुझे किसी ने खबर ही न दी।

सुमन्त—कौन जाने?

वशिष्ठ—कुछ भी तो पता नहीं।

राम—आश्चर्य है। (कैकेयी से) माता, कुछ बताओ तो सही। इस प्रकार आप दुखी क्यों बैठी हैं?

कैकेयी—(उसी भाँति बैठी रहती है।)

राम—क्या ऐसी बात है माता ? आप अनिष्ट से इस प्रकार भयभीत होकर मौन हो रही हैं। क्या राजवैद्य ने आकर अब तक नहीं देखा ?

कैकेयी—(सिर हिलाकर इनकार करती है।)

राम—एक बार भी नहीं ? अच्छा मैं अभी बुलाता हूँ।

कैकेयी—(सिर हिला कर मना करती है।)

राम—न बुलाऊँ ?

कैकेयी—(सिर से) नहीं।

राम—क्यों मां ?—मैं देख रहा हूँ पिताजी को बहुत कष्ट है वैद्य के बिना—

कैकेयी—(राम को हाथ से रोकती है और बैठ जाने का इशारा करती है।)

राम—(बैठ जाते हैं। कैकेयी से कुछ सुनना चाहते हैं।)

कैकेयी—राम, महाराज को कोई कष्ट नहीं है।

राम—तो क्या है, मां ? क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है ?

कैकेयी—नहीं।

राम—फिर, जल्दी बताइये मां। पिताजी की दशा मुझ से देखी नहीं जाती।

कैकेयी—राम, बात यह है कि महाराज को तुम्हारा बहुत मोह है।

राम—यह तो आपका स्नेह और आशीर्वाद है, मां। इस समय तो यह बताइये कि महाराज का कष्ट किस प्रकार दूर हो।

कैकेयी—तुम्हारे करने से ही होगा, राम।

राम—कहो मां, कहो। मेरे सर्वस्व-त्याग से भी यदि पिता जी का कष्ट दूर हो तो मैं तैयार हूँ।

कैकेयी—तुम बड़े लायक हो, बेटा। महाराज को तुम से ऐसी ही आशा है।

दशरथ—(गहरी निश्वास के साथ 'राम' कहकर आह भरते हैं।)

राम—पिताजी। पिताजी।—मैं आपका राम आपके पास खड़ा हूँ।

कैकेयी—देखो, राम।

राम—आज्ञा करो, माँ।

कैकेयी—मैं आज्ञा कुछ नहीं करती। मैं तुम्हें बता देना चाहती हूँ कि महाराज तुम्हें मुँह से कुछ नहीं कहा चाहते हैं। उनका तुम पर अगाध स्नेह है। परन्तु—

राम—कहो, माँ। कहो।

कैकेयी—महाराज ने मुझे दो वरदान देने कहे थे। मैंने आज जो जी मे आया माग लिया। इसी पर महाराज दुखी है। वे नहीं चाहते तुम्हारे बजाय भरत को राजगद्दी मिले। न वे तुम्हारे वनवास की आज्ञा दे सकते है,—चौदह वर्ष का वनवास।

राम—इतनी-सी बात। नहीं, इसके लिए पिताजी यों कभी दुखी न होंगे। कोई और भारी कारण होगा, माँ। अवश्य ही मुझ से कुछ अनुचित बन पड़ा होगा।

कैकेयी—नही राम, और तो मैं कुछ नही जानती।

राम—अगर यही बात है माँ, तो मैं तैयार हूँ। मैं आज ही वन के लिए जाता हूँ। भैया भरत राज पावे। इससे मेरा रोम-रोम सुखी होगा।

कैकेयी—परन्तु महाराज को यह स्वीकार नहीं। वे एक पल के लिए भी तुम्हारा वियोग नही सह सकते।

राम—क्या कहती हो मां। आप पिताजी से कहिए कि वनवास ही मेरे लिए सब तरह हितकर है। जहां ऋषियों के आश्रमों में यज्ञ का पवित्र धुआं छाया रहता है। जहां वेद की ऋचाएँ सुनकर कान धन्य होते हैं। जहां की ज्ञान-चर्चा में हृदय के कपाट खुल जाते हैं। जहां के पृथ्वी और आकाश में स्वच्छता विराजती है। जहां के जल-वायु में स्वास्थ्य और जीवन बरसता है, ऐसे वनवास का सुयोग बड़े भाग्य से मिलता है, मां।

कैकेयी—परन्तु पिता का स्नेह है, बेटा।

राम—स्नेह नहीं मोह है मां। तुम मेरा हिताहित समझ कर पिताजी को समझा दो ना।

कैकेयी—मेरी बात महाराज को इस समय जहर मालूम होती है। इसलिए तुम्हीं समझाओ। जो वंश अपनी सत्यवादिता के लिए विख्यात है, उसके यश में यह धब्बा क्या अच्छा लगेगा? सब कहेंगे रघुवंश के महाराज दशरथ दो वरदानों के लिए अपने वचन से फिर गये। रघुवंश के लिए यह कितने कुयश की बात होगी।

राम—नहीं, यह कैसे हो सकता है, मां?

कैकेयी—तुम सर्वथा योग्य हो, राम। तुम समझाओ। महाराज तुम्हारी बात मान लेंगे।

राम—(सुमन्त और वशिष्ठ की ओर देखते हैं। वे सिर झुकाए चुपचाप बैठे हैं।) गुरुदेव! पिता जी को सचेत करिये।

वशिष्ठ—(उच्च स्वर में) महाराज।

दशरथ—(आंख खोलते हैं। इशारे से राम को पास बुला लेते हैं। राम घुटनों के बल झुक जाते हैं। राजा एक हाथ से उनका सिर अपनी छाती से लगा लेते हैं। आँखों से आँसू गिरते हैं।) राम बेटा।

राम—पिताजी, आप दुखी न हों। इतनी साधारण बात के लिए आप कष्ट पा रहे हैं। माताजी ने मुझे बता दिया है। यह तो मेरे मन की बात हुई।

दशरथ—(उठना चाहते हैं। सुमन्त सहारा देकर उठाते हैं।) नहीं राम, वत्स ! यह न कहो।

राम—पिताजी, आप जी मे विलग न मानें। मैं सच कहता हूँ आज ही मेरा सच्चा भाग्योदय हुआ। आज मेरा जीवन धन्य हो गया। माता और पिता दोनों की आज्ञा का पालन एक साथ करने का सौभाग्य दुनियाँ मे किसे प्राप्त होता है ?

दशरथ—बेटा। आह, भगवान् ने तुम्हे कितना सरल बनाया है !

राम—पिताजी। मुझे आज्ञा दीजिये, मैं माता कौशल्या से बिदा हो आऊँ।

दशरथ—राम, बेटा। तुम क्या कहते हो ? मै कभी तुम्हें आँखों से ओट न होने दूँगा। मै वचन-भंग का अपयश ले लूँगा। सत्य-प्रतिज्ञ की प्रतिष्ठा छोड दूँगा, परन्तु तुमसे विलग न हो सकूँगा। इस दुष्टा, पापिनी के कुचक्र को कभी सफल न होने दूँगा।

राम—पिताजी, आप तो पुण्यात्मा हैं। मैं आपको क्या समझाऊँ ? पर इतना तो कहूँगा कि आप मुझे पुत्र का धर्म पालन करने से न रोकिये। आपने जो शिक्षा मुझे बचपन से दी है, उसे आज मेरे आचरण मे झलकने दीजिये।—समय थोड़ा है, और मुझे आज ही प्रस्थान करना है।

[झुककर राजा के चरण छूकर चले जाते हैं]

दशरथ—राम। राम।—चला गया।—बुलाओ सुमन्त। जरा मेरे राम को बुला लो। (वशिष्ठ की ओर मुड़कर) गुरुदेव

तुम्हीं राम को [illegible] समझाओ।—हा! राम!

(पलंग पर गिर जाते हैं, [illegible])

वशिष्ठ—(दुःखित होकर) ओफ़, कितना दारुण व्यवहार है? (रानी से [illegible]) रानी, तुम क्या करने जा रही हो? क्या तुम्हें इसका भी पता है?

कैकेयी—(कुछ नहीं बोलती है।)

वशिष्ठ—निश्चय ही यह तुम्हारा अविचार है, रानी! राम-से पुत्र के लिए तुम्हारा यह व्यवहार कभी उचित नहीं है। देखो, सोच लो। समझ लो। पीछे पछताओगी।

कैकेयी—(निरुत्तर रहती है।)

वशिष्ठ—भरत समझदार हैं। वे भी तुम्हारे इस हठ का कोई मान न करेंगे। तुम नहीं जानतीं इस प्रकार राम का अहित करके तुम उन्हें यश के शिखर पर चढ़ा रही हो। इससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण न होगा।

कैकेयी—ऋषिराज, यश के शिखर पर चढ़ाना भी आप कहते हैं और इसे अनुचित भी बताते हैं।—नहीं आप अभागे राजकुमार भरत की माता के हृदय को बाँच सकते।

वशिष्ठ—रानी, तुमने राम को नहीं पहचाना है। तुम अपने भरत को भी नहीं जानतीं। वशिष्ठ का वचन कभी मिथ्या नहीं होता।

कैकेयी—गुरुदेव, क्षमा चाहती हूँ।

वशिष्ठ—मेरी ओर से तुम्हें कोई बाधा नहीं है। रघुवंश के उज्ज्वल इतिहास में यह काला पृष्ठ भी जुड़े बिना न रहेगा, यही सोच है।

(प्रस्थान)

दशरथ—(आँखें खोलकर सुमन्त से) सुमन्त, मालूम पड़ता है गुरुदेव राम को समझाने गये है। देखो, तुम अभी भरत को ले आने के लिए शीघ्रगामी रथों पर दूत भेज दो। अभिषेक की सारी सामग्री तैयार रक्खो। आते ही भरत का तिलक कर देना होगा।

सुमन्त—जो आज्ञा महाराज!

दशरथ—परन्तु सुमन्त देखना, कहीं राम वन जाने का हठ न करें। तुम उन्हें रोक देना।—कह दना, महाराज की आज्ञा नही है। उन्होंने मना किया है।

कैकेयी—मेरे भरत को इस अयोध्या मे बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। सुमन्त, राम को वन जाने से रोकते समय यह भी कह देना कि दशरथ ने आज रघुवश की प्रतिष्ठा को दुनियाँ की दृष्टि मे गिरा दिया है। आज से रघुवश का कोई राजा सत्यवादी नहीं कहा जा सकेगा।

दशरथ—सुमन्त, जा रहे हो?

सुमन्त—जा रहा हूँ, राजन। (जाने को उद्यत होते हैं)

कैकेयी—राम को यह भी बता देना सुमन्त। कि रानी कैकेयी आज अयोध्या छोड़े जा रही है। वह घर घर भीख माँग कर खा लेगी पर तुम्हारे आगे हाथ न फैलायेगी। कह देना अब तुम निष्कटक राज्य भोगो। भरत तुम्हारे मार्ग मे कभी न आवेगा।

सुमन्त—(रानी के मुँह की ओर ताकते हैं)

कैकेयी—परन्तु इतना सतोष है कि जाते जाते मैं सत्यवादिता का झडा नीचा किये जा रही हूँ।

सुमन्त—रानी, ऐसा न कहो।

दशरथ—सुमन्त, जल्दी जाओ। देखो देर न हो।

सुमन्त—जो आज्ञा राजन्। (सुमन्तका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या का राजमहल

(राजा दशरथ उसी प्रकार पड़े हैं । कैकेयी एक तरफ बैठी है उसकी दृष्टि द्वार की ओर है । शायद किसी की प्रतीक्षा में है । भीतर से दासी मन्थरा धीरे धीरे आती है । कैकेयी मुँह घुमाकर उसकी ओर देखते ही उँगली के इशारे से उसे पास बुलाती है ।)

मथरा—(पास आकर) आज्ञा महारानी ।

कैकेयी—(धीरे से) कौशल्या के यहाँ क्या हो रहा है ?

मथरा—सुकेशी को भेजा है । आती ही होगी ।

कैकेयी—अच्छा, जाओ ।

(मन्थरा जाती है और लौट आती है ।)

मथरा—(कैकेयी के समीप आकर धीरे-धीरे कहती है) सब ठीक हो रहा है ।

कैकेयी—ठीक हो रहा है ?

मथरा—हाँ, महारानी ।

कैकेयी—राम के साथ सीता भी ?

मथरा—और लक्ष्मण भी ।

कैकेयी—लक्ष्मण भी ?

मथरा—हाँ।

कैकेयी—सच ?

मथरा—हाँ, महारानी।

कैकेयी—परन्तु सीता और लक्ष्मण के लिए वस्त्र कहाँ हैं ? देखो, जाकर अभी तैयार कराओ।

मथरा—सब कुछ तैयार है, महारानी।

कैकेयी—तैयार है। शाबाश मथरा, तू देखने में जैसी भोंडी है काम में वैसी ही निपुण है।

मथरा—आप एक बार देख लेतीं।

कैकेयी—देख लिया है। देख लिया है। तेरे प्रबंध पर मुझे विश्वास है।

(राजा दशरथ करवट बदल कर गहरी निश्वास लेते है, और 'राम, हा ! राम' कहते है)

मथरा—स्वामिनी, एक बार चलकर देख लेतीं।

कैकेयी—चल

(एक ओर से दोनों जाती हैं। दूसरी ओर से राम लक्ष्मण और सीता प्रवेश करते हैं।)

राम—(दशरथ के समीप जाकर) पिताजी।

दशरथ—(करवट लेकर और आँखें खोलकर) आओ वत्स। (सीता और लक्ष्मण को राम के पीछे देखकर कुछ विचलित-से होकर) वधू जानकी और लक्ष्मण। तुम सब लोग साथ-साथ कैसे ?

राम—पिताजी। मैंने बहुत समझाया पर यह दोनों हठ पकड गये हैं। ये भी मेरे साथ जा रहे हैं।

दशरथ—क्या कहते हो, राम। जा रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं ?—और तुम कहाँ जा रहे हो ? राम, क्या तुम्हें गुरु वशिष्ठ

ने कहा नहीं राम ? क्या सुमन्त तुम्हारे पास अभी तक नहीं पहुँचे ?

राम—पिताजी, आपको इस प्रकार कातर होते देखकर मुझे दुख होता है।

दशरथ—राम, बेटा ! तुम से मेरा दुख देखा नहीं जाता। इसीसे तुम कहीं मत जाओ। बुढ़ापे में मुझे सुखी करो।

राम—मैं वही करूँगा पिताजी जिससे आपको सच्चा सुख मिले और धर्म की रक्षा हो।

दशरथ—राम बेटा, मुझे सुख नहीं चाहिये, धर्म भी नहीं चाहिये अगर वह तुम्हारे बिना प्राप्त होता है।

राम—पिताजी ! मुझे ऐसा लग रहा है जैसा कि आज आप मेरे मोह में आकर कर्तव्य को भुला रहे हैं। धर्म ही जिसके जीवन का आधार रहा है वह कभी मुँह से निकले हुए वचनों के लिए स्वप्न में भी क्या ऐसा कहेगा ? आप जरा सोचिये, आपके इस विचार से महान रघुकुल की प्रतिष्ठा क्या अप्रतिहत रह सकेगी ?

दशरथ—किसका वचन ? कैसा वचन ? बोलो, राम ! मैंने ऐसा कोई वचन नहीं दिया। क्या कोई अपने प्राण को निकाल कर फेंक सकता है ? यह सब तुम्हारी विमाता का षड्यन्त्र है, उसकी राक्षसी चाल है।

राम—ऐसा नहीं, पिताजी। आपके मुँह से जो एक बार निकल गया सो निकल गया। मेरे लिए वह परिपालनीय होगया। आपका आज्ञाकारी राम आप के आदेश को आकाशवाणी से भी अधिक पवित्र समझता है।

दशरथ—बेटा ! राम ! क्या कह रहे हो ? मैं समझ नहीं सका। आज मेरे कान बहरे हो रहे हैं। मेरी आँखें अंधी हो गई

हैं। मुझे न कुछ दीखता है न सुनाई देता है।

राम—पिताजी, माँ कौशल्या को देखिये। उन्होंने हँसते-हँसते हम लोगों को विदा दी है।

दशरथ—बेटा, कौशल्या देवी हैं।

राम—माँ सुमित्रा ने आग्रहपूर्वक लक्ष्मण को मेरे साथ कर दिया है।

दशरथ—वह धन्य हैं, राम। पापी और अन्यायी मैं हूँ, जो इतना बड़ा अनर्थ कर बैठा हूँ। बेटा लक्ष्मण। तू पीछे क्यों खड़ा है? आज तेरा यह कोप और दर्प कहाँ गया? क्यों अपना धनुष नहीं खींचता? क्यों नहीं मुझे मार कर इस समस्त काड को शान्त कर देता? गंभीर और सकोची राम अन्याय और अत्याचार की उपेक्षा कर सकता है, पर तू चुपचाप क्यों खड़ा है? ले, बेटा। इस छाती को अपने नुकीले बाणों से छेद दे!

[कैकेयी का प्रवेश]

कैकेयी—इसकी क्या आवश्यकता है, महाराज। आपके मुँह का एक नकार ही काफी है।—आप इन्कार कर दें। कर क्यों नहीं देते।

राम—माँ, पिताजी ने तो कह दिया। अब मेरा कर्त्तव्य शेष है। सो मैं तैयार हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये। आप का स्नेह वनवास के समय मेरा सहायक हो।

कैकेयी—(मुँह नीचे झुक जाता है। चेहरा म्लीन हो जाता है। उस भाव को छिपाने का नाट्य करती हुई) बेटा, तुम जुग-जुग जिओ। तुम रघुवश का मुख उज्ज्वल करोगे।

राम—ना मां, ऐसा न। मेरे पीछे यह मैथिली खड़ी है। यह भी आपका आशीर्वाद चाहती है।

कैकेयी—तू जानकी। तुम्हें तो जाने की आवश्यकता नहीं। तुम यहीं रह सकती हो।

सीता—(झुककर प्रणाम करती है।)

राम—मां, भैया लक्ष्मण का भी प्रणाम स्वीकार करो।

कैकेयी—अरे, यह क्या ? तुम सब तो अयोध्या सूनी कर देना चाहते हो। मैं तो कठिन कर्त्तव्यवश ऐसा कर रही हूँ। मेरा यह मतलब तो नहीं था।

लक्ष्मण—(आगे बढ़कर सिर झुकाते हैं)

दशरथ—रानी। अब तो कलेजा ठंडा हुआ।

राम—पिताजी, आप शान्त हों, और मुझे आज्ञा दें।

(मथरा का वल्कल लिए प्रवेश)

कैकेयी—लो बेटा, राम। राजकीय वस्त्र त्याग कर वन के योग्य वस्त्र पहन लो।

राम—अवश्य, अवश्य—मां, लाओ।

(वस्त्र लेकर पहनने लगते हैं। सीता मुंह छिपाकर रोने लगती है)

दशरथ—धन्य हो, मां का यह उपहार।

राम—(सीता से) यह वल्कल उठालो और तुम भी जाकर भीतर बदल आओ। देर क्यों करती हो ?

(कैकेयी वल्कल सीता की ओर बढ़ाती है, और सीता लेना चाहती है।)

दशरथ—(गरज कर) अरी पापिष्ठा ! ठहर, यह क्या करती है ? वनवास राम का हुआ है या सीता का भी ? अब क्या तू सब को वल्कल पहनायेगी ?

कैकेयी—(रुक जाती है और राजा के मुंह की ओर देखने लगती है)

सीता—पिता जी, स्वामी के वस्त्रों से बढ़िया वस्त्र पहनने की आप मुझे आज्ञा देते हैं ?

दशरथ—(शान्त होकर सिर झुका लेते हैं ।)

सीता—(कैकेयी के हाथ से वल्कल लेकर भीतर चली जाती है ।)

लक्ष्मण—(आगे आकर वल्कल लेते और पहनते हैं ।)

दशरथ—ओफ़ ।

(तकिए पर गिर पड़ते हैं । आँसुओं की धार से तकिया भीगने लगता है ।)

प श्चा ता प

नाटक के पात्र

कन्हैया	अछूतोद्धार में लगा हुआ एक कुलीन युवक।
पँचकौड़ीदास	एक साधारण वैद्य।
डाक्टर	एक ईसाई डाक्टर जो पहले भंगी था।
रामदुलारी	वैद्य जी की पत्नी।
रधिया	एक अछूत कन्या।

रधिया की माँ, वैद्य जी के साथी, कन्हैया से पढ़ने वाले अछूत विद्यार्थी।

परिचय

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ग्वालियर के रहनेवाले हैं, परन्तु कई वर्षों से लाहौर में रहते थे। पंजाब के विभाजन के पश्चात् अब मुंबई चले गए हैं। आप उच्च कोटि के कवियों और नाटककारों में से हैं। 'रक्षाबंधन' 'बन्धन' 'स्वप्नभंग' 'प्रतिशोध' 'शिवा-साधना' 'छाया' 'मंदिर' आदि कई नाटक आपने लिखे हैं जो सारे हिन्दी जगत् में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आपकी भाषा सरल और मुहावरेदार होती है।

प्रस्तुत एकांकी नाटक का विषय अछूतोद्धार है। जिनको हम अछूत और दलित समझते हैं उनकी सद्भावनाओं को हम लोग बहुत कम जानते हैं। इस नाटक में एक ओर अछूतों की भक्ति, सेवा धर्म, दयाभाव और उठने की इच्छा दिखाई गई है और दूसरी ओर उच्च जाति वालों के अत्याचारों का दिग्दर्शन कराया गया है। पंचकौड़ीदास गाँव में वैद्यक का काम करते हैं। वे ब्राह्मण हैं, और अछूतों तथा अछूतों में काम करनेवाले कुलीन लोगों से घृणा करते हैं। उसी गाँव में एक भंगन की लड़की रधिया जो उच्च जातियों के इस अत्याचार का खंडन करती है, हैजे से बीमार पड़ जाती है। रधिया की माँ वैद्यजी से प्रार्थना करने आती है कि वे रधिया को देखकर दवाई दे दें परन्तु वे अछूत के घर जाने से इन्कार कर देते हैं। इधर वैद्यजी का लड़का बीमार है और उन्हें शहर से एक डाक्टर को बुलाना पड़ा है। डाक्टर को हरिजनों के प्रति वैद्यजी के इस व्यवहार से क्रोध आता है और वह रधिया का इलाज करने चला जाता है। वह वैद्यजी को बता देता है कि वह भी जन्म से भंगी है परन्तु अब ईसाई हो गया है।

डाक्टर के जाने के बाद वैद्यजी के लड़के की अवस्था फिर बिगड़ जाती है। वैद्यजी रधिया के घर दौड़े आते हैं। भंगी से घिन थी, अब

[एक गाव के छोटे-से मदिर की सीढियाँ। मदिर के अदर घंट, झालर और शख आदि के बजने की आवाज़ हो रही है। आरती भी गाई जा रही है—लेकिन दूसरी आवाजों में मिलकर वह साफ नही सुनाई देती। एक १२-१३ वर्ष की लडकी मदिर की सबसे निचली सीढी पर बैठी हुई ध्यान लगाकर मदिर में से आनेवाली आवाजों को सुन रही है। लडकी सुदर भी है, भोली भी है और साफ-सुथरी भी। कपडे बडे साधारण हैं, कही २ फटे भी हैं, लेकिन मैले नही हैं। चेहरे पर समझदारी की झलक है—ऐसा जान पडता है जैसे वह कुछ पढती लिखती भी है। लडकी का नाम है रधिया। रधिया कुछ सोच में डूबी-सी बैठी है कि उसी गाव मे अभी-अभी नया आया हुआ युवक—कन्हैया आता है। उसके हाथ मे कुछ फूल है। रधिया का ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता। लडका ठीक उसके पीछे खडा होकर उसके सिर पर कुछ फूल फेंक देता है। रधिया चौक कर पास में पडे एक पत्थर को उठाती है और खडी होकर उस फूल फेंकनेवाले को मारना चाहती है कि कन्हैया को देखकर शर्मा जाती है।]

कन्हैया—फूल के बदले पत्थर देनी हो, रधिया।

रधिया—देवता पर चढ़ाए जानेवाले फूल तुमने मुझ पर क्यों फैके ?

कन्हैया—इसलिए कि तुम देवी हो। मनुष्य ही तो सच्चा

देवता होता है, रधिया! जो मनुष्य की पूजा नहीं करता वह भगवान की पूजा कैसे कर सकता है।

रधिया—मनुष्य की पूजा करने से देवता नाराज होते हैं।

कन्हैया—सो क्यों?

रधिया—मेरे हिस्से की मिठाई यदि तुम खा जाओ तो क्या मुझे क्रोध न आयेगा?

कन्हैया—तुम्हारी माँ का हिस्सा भी तुम्हें दे दिया जाय तो तुम्हारी माँ प्रसन्न होगी ना? मनुष्य भी तो भगवान की सन्तान है—जो उसकी सन्तान की पूजा करता है उससे भगवान प्रसन्न होते हैं। अब जाऊँ, भगवान की आरती में भी शामिल हो लूँ।

[कन्हैया जाता है और रधिया की माँ आती है। उसके हाथ में झाड़ू और टोकरा है।]

रधिया की माँ—अरी रधिया तू यहाँ क्या कर रही है? अभी तक झाड़ू ही नहीं लगाई सड़क पर। अरी, पुजारी जी नाराज हो जायँगे और भगवान के भोग में से हमें कुछ नहीं देंगे।

रधिया—जरा भगवान की आरती सुनने लगी थी—फिर कन्हैया भैया आगये उनसे बातें करने लगी।

रधिया की माँ—बेटी, हमारे लिए तो लोगों की सेवा करना ही भगवान की पूजा है। चल झाड़ू लगा।

रधिया—नहीं माँ आज मैं भगवान के दर्शन करूँगी।

रधिया की माँ—मैं तुझे कितनी बार समझा चुकी हूँ कि हमारी मंदिर के भीतर जाकर भगवान के दर्शन करने की औकात नहीं है।

रधिया—क्यों, क्या हम मनुष्य नहीं हैं?

रधिया की माँ—मनुष्य तो हैं लेकिन नीच जात हैं—ऊँची जात वालों की बराबरी हम कैसे कर सकते हैं ?

रधिया—लेकिन कन्हैया दादा तो कहते हैं कि जो सेवा करते हैं वे ऊँचे आदमी होते हैं—हम सब लोगों की सेवा करते हैं—जैसे माँ बच्चे की सेवा करती है—फिर हम नीच कैसे हुए ? हम मंदिर मे, भगवान के दर्शन के लिये क्यों नही जा सकते ?

रधिया की माँ—हमारे मदिर मे जाने से मदिर अपवित्र हो जाता है, बेटा। हम गदे काम जो करते हैं - गदे जो रहते है।

(वैद्यराज पँचकौड़ीदास आते हैं । और सीढियो पर चढ़ते हुए मदिर में जाते हैं । वे एक मैली धोती पहने है जो आधी वे पहने हुए हैं और आधी कंधे पर डाले हुए हैं । बदन उघाड़ा है । एक मेला और मोटा जनेऊ पहने हुए हैं । उनके एक हाथ में फूलो से भरा एक दौना है, दूसरे हाथ मे जल-भरा लोटा । पँचकौड़ीदास रधिया की माँ और रधिया दोनो पर एक दृष्टि फेंककर मदिर में घुस जाते हैं ।)

रधिया—माँ, हम ऐसे पंडितों से तो अधिक स्वच्छ हैं। ये मंदिर मे जा सकते हैं तो हम क्यों नहीं ?

रधिया की माँ—बडी जातवाले गदे रहकर भी पवित्र गिने जाते है। बेटा, यह सब कर्मों का फल है। हमने बुरे काय जो किए थे इसी लिए भगी बने है—इन्होंने अच्छे कार्य किए इस लिए ये बामन हुए।

रधिया—झूठी बात। यह व्यवस्था इन्ही की बनायी हुई है। यह इनका अत्याचार है और हमारी बेसमझी। जैसे माँ सब बच्चों को बराबर प्यार करती है—वैसे ही भगवान भी। क्या हम भगवान की संतान नहीं है ? क्या हम में भक्ति-भाव नहीं ? क्या हम मनुष्य नहीं ?

रधिया की माँ—हैं क्यों नहीं। लेकिन भगवान की आज्ञा भी तो हमें माननी होगी। पंचों की आज्ञा ही भगवान की आज्ञा है। चलो बेटी, हम अपना काम करें।

रधिया—ऊँ—ऊँ—मैं तो आज मंदिर में जाऊँगी।

(वे भागी चलती हैं कि ऊपर शोर सुनाई देता है। पंचकौड़ी कन्हैया को धक्के मारता हुआ बाहर ला रहा है।)

पचकौड़ी—तुम गान्धी के चेलों ने धर्म-कर्म को नष्ट करने की ठान ली है। चांडाल रोज भंगियों के मोहल्ले में पढ़ाने जाता है और भगवान के मंदिर में घुस आया। जाओ, निकल जाओ। फिर कभी मंदिर की सीढ़ी पर पैर रखा तो सिर फोड़ दूँगा। यह धर्म का मामला है इसमें हम रियायत नहीं कर सकते।

(जोर से धक्का देते हैं। कन्हैया सीढ़ियों पर से लुढ़क जाता है—उसके सिर में चोट आती है। रधिया और रधिया की माँ उसे सम्हालती हैं। रधिया अपनी चुनी फाड़कर चोट पर पट्टी बाँधती है।)

रधिया—भैया, तुम्हें हमारे कारण बहुत कष्ट मिला।

रधिया की माँ—मैं तो तुमसे पहले ही कहती थी कि हमारे मोहल्ले में मत आया करो। इसे ये ऊँची जातवाले कभी सहन नहीं करेंगे।

कन्हैया—ये लोग अभी समझते नहीं हैं—एक दिन समझ जायँगे

रधिया—हम लोग इनका काम छोड़ दें तो एक दिन में इनकी बुद्धि ठिकाने आ जाय।

कन्हैया—नहीं रधिया, हम सेवा और प्रेम से ही इन नादानों को रास्ते पर लायँगे (उठकर खड़ा हो जाता है) अब मैं ठीक हूँ तुम अपना काम करो।

(कन्हैया चला जाता है। एक भगत मंदिर से बाहर निकलता है। उसके हाथ में एक दौना है जिसमें कुछ प्रसाद है, जिसे वह खाता आ रहा है, सीढ़ियों से नीचे आकर वह जूठन रधिया को देता है—लेकिन रधिया लेती नहीं, मुँह फेर कर खड़ी हो जाती है।)

रधिया की माँ—ले ले, बेटी ! भगवान का प्रसाद है।

रधिया—जूठन खाने से हैजा हो जाता है, माँ। आजकल हैजा फैल भी रहा है।

रधिया की माँ—भगवान के प्रसाद का अपमान नहीं करते, बेटी।

(दौना आप ले लेती है। भगतजी चले जाते हैं।)

रधिया—(माँ के हाथ से दौना छीनकर फेंकते हुए) जो हमें नीच समझते हैं उनकी जूठन खाने की हमें क्या जरूरत ? चलो माँ, यहाँ से चलो।

रधिया की माँ—काम तो कर लें। (झाड़ू लगाने लगती है। रधिया रोष में भरी चली जाती है।)

[मंदिर में से भजन के गाने का शब्द आता है।]

(नेपथ्य में गान)

प्रभु मोरे अवगुण चित्त न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहो तो पार करो।
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवे कंचन करत खरो।

(झाड़ू लगाते लगाते रधिया की माँ ओझल हो जाती है।)

[परदा बदलता है]

दूसरा दृश्य

[वैद्यराज पंचकौड़ीदास एक बगिया में गाँव के कुछ मित्रों के साथ बैठे हुए हैं। एक व्यक्ति सिल पर भंग घोट रहा है। भंग का सभी सामान मौजूद है।]

भंगघोटनेवाला—वैद्यजी, आपकी ग्रन्थों में भंग के भी गुण दिये होंगे ना ?

पँचकौड़ीदास—हाँ-हाँ, क्यों नहीं। हमारे आयुर्वेद में हरेक फल-पत्ती, फल-मूल के गुण-दोष दिये हैं। अरे भैया, जहाँ तक हमारी देसी चिकित्सा-विधि की पहुँच है वहाँ तक तो अंग्रेजी डाक्टरी अभी हजार बरस नहीं पहुँच सकती।

एक साथी—लेकिन आजकल सब लोग दौड़-दौड़कर डाक्टरों के पास ही जाते हैं।

पँचकौड़ीदास—कुछ नहीं, यह पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव है। दो अक्षर अंग्रेजी के पढ़ गए तो अपने बड़े-बूढ़ों को, देसी वस्तुओं को, देसी रीति रिवाजों को निकम्मा और हीन समझने लगे।

दूसरा साथी—हाँ, पश्चिम की हरेक वस्तु आराध्य बन गई है। फैशन है—फैशन, वैद्य जी।

भंगघोटनेवाला—लेकिन वैद्यजी, भंग के गुण तो आपने बताये ही नहीं।

पँचकौडी—रंग क्या है ? वास्तव मे यही तो आर्य ऋषियों का सोम-रस था। एक प्याले मे स्वर्ग की सैर कर सकते थे। वैद्यक के अनुसार देखो तो कब्ज को यह दूर करे, बल बढ़ाये, बुद्धि बढ़ाये और भूख भी बढ़ाये।

दूसरा साथी—भूख वाली बात तो हितकर नही है। इस राशन के युग मे भूख का बढ़ना अत्यन्त दोषपूर्ण है।

(सब हँसते है। पँचकौडी की पत्नी रामदुलारी आती है।)

रामदुलारी—यहाँ तुम्हारी भग घुट रही है, वहाँ लल्ला का हाल खराब है।

पँचकौड़ी—अरे, तुम जब आओगी—कोई बला लेकर आओगी। सारा मजा किरकिरा कर दिया।

रामदुलारी—रहने दो अपना यह मजा। जब देखो निठल्लों को बिठाकर भग घोटते रहते हो। शर्म नही आती। अपने बाल-बच्चों की भी चिंता नहीं।

एक साथी—क्या हुआ, भाभी जी।

रामदुलारी—हुआ क्या, अपना सिर। मेरा भाग्य ही बुरा है जो इसके घर आई।

पँचकौडी—हाँ-हाँ, नहीं तो कोई धन्ना सेठ तुम्हे मिल जाता।

रामदुलारी—तुमने बड़ा नौलखा हार पहना दिया है मुझे। अब यह बताओ घर चलते हो या नहीं ? भग की तरग मे पड़े रहोगे ?

पँचकौडी—बस—एक गिलास चढ़ाकर अभी आया।

भगघोटनेवाला—हाँ, भाभी, अब तैयार ही समझो।

दूसरा साथी—हुआ क्या है लल्ला को ?

पँचकौड़ी—अरे कुछ नही, मामूली दस्त है। साथ हो

एक मोरी के आ गई तो इनके शक हो गया। औरत की जान ठहरी—जल्दी घबरा जाती है।

पहला साथी—नहीं वैद्य जी, जरा घबराना ठीक है। आजकल कुछ हैजे की भी शिकायत सुनी जाती है।

पंचकौड़ी—लेकिन मैं ठीक दवा दे आया हूँ। आयुर्वेद में सब बीमारियों का इलाज है। हैजे की दवा तो मेरी रामबाण है। हाँ—सचमुच—मेरे नुस्खे लेकर ही तो बड़े बड़े वैद्यों ने अपनी दवाएँ तैयार की हैं।

दूसरा साथी—हाँ, वैद्यजी! आपकी तुलना कौन कर सकता है। यहाँ गाँव में पड़े हैं—शहर में होते तो लोग सिर-आँखों पर रखते। हवेलियाँ बन जातीं हवेलियाँ।

(एक १२-१४ साल की लड़की आती है जो बहुत घबरायी हुई जान पड़ती है।)

लड़की—भैया ने फिर कै कर दी है। सब कपड़े खराब कर डाले हैं।

पंचकौड़ी—सचमुच तबीयत ज्यादा खराब जान पड़ती है। (एक साथी से) ऐसा करो भैया, अभी दौड़कर शहर जाओ और वहाँ से किसी योग्य डाक्टर को लेकर आओ।

भंगघोटनेवाला—लेकिन, वैद्यजी, उलटे बाँस बरेली को भेजने की क्या जरूरत है? आपके रहते डाक्टर की क्या जरूरत? भला आप से अधिक वह क्या कर लेगा?

पंचकौड़ी—एक से दो अच्छे होते हैं, भैया। वैसे तो मुझे अपनी चिकित्सा पर भरोसा है फिर भी... तुम जानते हो ऐसे वक्त पर बुद्धि भी काम नहीं देती। (पत्नी से) चलो, लल्लू के

कपडे वदल डालो, और देखो, घबराओ मत—भगवान सब ठीक करेगा।

एक साथी—हां, भाभी, मैं अभी डाक्टर को लेकर आता हूं।

(चल जाते हैं)

[पट परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

(एक खुले मैदान में कन्हैया कुछ अनपढ़ कहे जाने वाले लोगों को पढ़ा रहा है। पढ़ने वालों में बालक-बालिकाएँ भी हैं— युवक-युवतियाँ भी हैं—एक दो वृद्ध महाशय भी हैं।)

एक वृद्ध—भैया, हमारे साथ आप क्यों माथा-पच्ची करते हैं—कहीं बूढ़े तोते भी पढ़ते हैं ?

कन्हैया—क्यों नहीं चाचा जी, फारसी के एक बहुत बड़े कवि हुए हैं शेखसादी, उन्होंने चालीस वर्ष की अवस्था के बाद पढ़ना शुरू किया था। इसी तरह संस्कृत के महाकवि कालिदास ने भी बचपन में कुछ नहीं पढ़ा था। विद्या पढ़ने के लिए कोई भी अवस्था ठीक है।

एक लड़का—(स्लेट दिखाता हुआ) मास्टर जी, यह सवाल नहीं आता।

कन्हैया—(स्लेट हाथ में लेकर, देखकर) अरे यह क्या किया है, २ और २ कितने होते हैं ?

लड़का—जी, चार।

कन्हैया—यहाँ पोच क्यों लिखे। तुम ध्यान नहीं देते। जाओ सवाल को फिर करो (लड़का चला जाता है)

दूसरा लड़का—मास्टर जी, मैं कल से पढ़ने नहीं आऊँगा।

कन्हैया—क्यों घसीटा ?

घसीटा—अम्मी कहती थी कि गाव वाले कहते हैं कि अगर तुम लोग मास्टर कन्हैया लाल से कोई सरोकार रखोगे, उनसे बच्चों को पढवाओगे तो गांव से निकाल दिये जाओगे।

एक बूढ़ा—हाँ, ऐसी चर्चा गाव मे है सही। वे कहते है कि पढ़-लिखकर ये कमीने लोग हमारी बराबरी करेंगे।

कन्हैया—हाँ, चाचा जी, ये लोग मुझे भी डराते धमकाते है। जान से मार देने की भी धमकी देते हैं।

दूसरा बूढ़ा—फिर भैया, तुम क्यों हमारे पीछे अपनी जान जोखम मे डालते हो ?

कन्हैया—ऊँच जात मे पैदा होने के पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ, ससार मे न कोई बडा है, न कोई छोटा। विद्या प्राप्त करने का सब को अधिकार है। और सब के साथ एक-सा बर्ताव होना चाहिए। आप सब को समाज मे बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए। आपको इसकी माग करनी चाहिए—उसके लिए लडना चाहिए।

एक बूढ़ा—जान पडता है तुम हमारी आजीविका छिनवाओगे। (हसता है)

कन्हैया—ऐसे डरने से काम नहीं चलेगा। जो काम करने का किसी का भी साहस नहीं होता—सब को घिन आती है—ऐसा कठिन काम आप लोग करते है। सफाई न हो तो ये ऊँची जातवालों का जीवित रहना भी कठिन हो जाय। इसके बदले मे ये क्या देते है तुम्हे—बडा उपकार दिखाते हैं, चार आने—आठ आने महीने और जूठी रोटियों के टुकडे। नहीं चाचा, तुम्हें इस अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन उठाना चाहिए।

रधिया—(कन्हैया के पास आ कर) मास्टर जी मैंने एक

कविता लिखी है। ([illegible])

कन्हैया—तुम्हीं सुनाओ। गाकर। आजकल तुम खूब अच्छा लिखती हो।

रधिया—(गाकर कविता सुनाती है)

देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है ?

जन्म पाया है मुसीबत
में, मुसीबत में जिएँगे।
खून अपना पी रहे हैं
खून अपना ही पिएँगे।
हैं हजारों घाव दिल में
हम इन्हें कब तक सिएँगे।

देखने तस्वीर दिल की कौन दिलमें झाँकता है।
देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है॥

कन्हैया—वाह रधिया। तुमने तो कमाल कर दिया। और सुनाओ।

बत्तियाँ हम विश्व-दीपक
की बने जलते रहेंगे।
आग में पलते रहे हैं
आग में पलते रहेंगे।
खाक होने जा रहे पर
ओस में खलते रहेंगे।

स्वर्ग का मालिक गरीबों को नरक में हाँकता है।
देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है॥

नीचता जीवन हमारा
नीचता करते रहेंगे।
पाप मे पैदा हुए हैं
पाप मे मरते रहेंगे।
लाल आँखे पुण्य की हम
देख कर डरते रहेंगे।

दोष दिखलाते सभी पर कौन उनको ढाँकता है।
देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है॥

देश को आजाद करने
चल पडे नेता हमारे।
स्वर्ग-भू पर आ रहा है
हँस रहे नभ के सितारे।
चल रहे चप्पू हवा मे
आ रही नैया किनारे।

कौन इन उजडे घरों की खाक आकर फाँकता है।
देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है॥

कन्हैया—वाह, खूब, जितनी प्रशसा की जाय थोडी। कहो ाचा जी, कितना अच्छा लिखा है रधिया ने। कौन कहता है क आप लोगों मे बुद्धि नही होती। अवसर मिले तो आप लोग डे-वडे काम कर सकते हैं। अच्छा, अब आज हमारा स्कूल ातम होता है।

(सब उठकर चले जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

(पंचकौड़ीदास के मकान के बाहर। रधिया की माँ घबराई सी आती है।)

रधिया की माँ—(पुकारती है) वैद्य जी महाराज। वैद्य जी महाराज !!

(अन्दर से पचकौड़ी और डाक्टर नवनीतराय बाहर निकलते हैं।)

पचकौड़ीदास—महाराज, बच्चे की दशा कैसी है ?

डाक्टर—मैंने इंजेक्शन लगा दिया है। बच्चा बच जायगा। चिंता न कीजिए।

पचकौड़ीदास—परमात्मा आपको सुखी रखें।

डाक्टर—अच्छा देखो। दवाई में जितना पानी मैंने मिलाया है उससे अधिक न मिलाइयेगा।

रधिया की माँ—वैद्य जी, मुझ पर कृपा करो। मेरी रधिया को हैजा हो गया है।

पंचकौड़ी—हैजा हो गया है तो दवा ले जा।

रधिया की माँ—जरा देख लेते तो।

पचकौड़ी—मुझे भी कन्हैया की तरह भ्रष्ट समझ लिया है तूने। अरे ब्राह्मण का बेटा भंगी के घर कैसे जायगा ?

रधिया की माँ—एक जान का सवाल है। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ।

(पैरों पर गिरना चाहती है। पचकौड़ी चौंककर दूर हो जाते हैं)

डाक्टर नवनीतराय—(जो अभी तक चुपचाप इस घटना को देख रहे थे—कुछ मुस्कराते हुए बोलते हैं) क्या बात है वैद्य जी, ऐसे चौंके क्यों ? क्या साँप काटने आया है ?

पचकौड़ी—अभी नहाना पड जाता। इन लोगों ने धर्म-कर्म सब छोड दिया है।

डाक्टर—अच्छा, आप भंगियों को नहीं छूते ?

पचकौड़ी—हम तो इनकी छाया से भी बचते हैं।

डाक्टर—(मुस्कराते हुए) आपको पता है, मैं कौन हूँ ?

पचकौड़ी—आप. आप ठहरे बडे आदमी

डाक्टर—मैं भी जात का भंगी हूँ

पचकौड़ी—भंगी ..?

डाक्टर—हाँ, भंगी। जब तक भंगी रहा तब तक लोगों ने मुझे इसी तरह ठुकराया जैसे इस गरीबनी को आप ठुकरा रहे हैं। मैं जब तक हिन्दू था, भगवान का भक्त था, चोटी रखता था, भजन गाता था तब तक अछूत था। ईसाई बन जाने से मानों मेरी काया ही बदल गई। आप लोग अब मेरे पैरों पडते हैं—घर मे बुलाते हैं—मेरे हाथ की दवा पीते हैं। [रधिया की माँ से] चलो बहन, मैं तुम्हारी बच्ची का इलाज करूँगा।

[डाक्टर और रधिया की माँ चले जाते हैं।
पचकौड़ी हक्काबक्का होकर रह जाता है।]

(एक मिनट के बाद)

पंचकौड़ी—सुनती हो, ललुआ की अम्माँ।

पंचकौड़ी की पत्नी—[आकर] क्या बात है—क्या होगया ? क्यों शोर मचा रखा है ?

पचकौड़ी—अरी, अपना तो धर्म नष्ट हो गया। इन अंग्रेजी कपड़ों में पता ही नहीं चला कि डाक्टर भंगी था।

पचकौड़ी की पत्नी—भंगी!

पचकौड़ी—हां भंगी! वह दवा फिंकवा दो।

पचकौड़ी की पत्नी—लेकिन दवा से तो बच्चे को कुछ आराम है! धर्म क्या बच्चे से भी ज्यादा प्यारा है, फिर गांव वाले क्या जानें कि यह डाक्टर भंगी था। बात यों ही दबी रहने दो।

पचकौड़ी—वह मुंहजल रनिया की मां सब जान गई है। वह गांव भर में फूंक देगी।

पचकौड़ी की पत्नी—उसे दो रुपए पकड़ा कर उसका मुंह बंद कर देना। इन कमीनों का क्या? दो पैसे में इनकी इज्जत-आबरू सब छीन लो।

पचकौड़ी—नहीं, अब ये ऐसे नहीं रहे। उस कन्हैया ने इन सब को बिगाड़ दिया है।

[अंदर से आवाज आती है। 'अम्मा-ओ-अम्मा!'
दोनों अंदर चले जाते हैं।]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—रधिया का मकान। रधिया एक चारपाई पर रोगी की हालत में लेटी हुई है। कन्हैया पास बैठा हुआ है। मकान में गरीबी के चिन्ह तो हैं—लेकिन हर तरफ साफ सुथरापन है।)

रधिया—जी बड़ा घबराता है, कन्हैया।

कन्हैया—घबराओ नहीं, रधिया। माँ जी पचकौड़ी के यहाँ गई हैं—वह आकर दवा देगा।

रधिया—वह चाण्डाल हमारे घर कभी नहीं आयगा। मैं तो उसकी दवा खाऊँगी भी नहीं। मुझे उसकी सूरत से घिन आती है।

कन्हैया—किसी से घृणा करना अच्छा नहीं, रधिया।

रधिया—वे लोग भी तो हमें धिक्कारते हैं, भैया ?

कन्हैया—यह हमारी जाति का दुर्भाग्य है, और क्या ?

(डाक्टर नवनीतराय और रधिया की माँ आते हैं।)

रधिया की माँ—बेटी, भगवान को सब की चिंता है—देखो ना देवदूत की तरह डाक्टर जी हमारे यहाँ आ गए हैं।

डाक्टर—(रधिया की परीक्षा करता हुआ) घबराओ नहीं बेटी। मैं तुम्हें जल्दी अच्छा कर दूँगा। (रधिया की माँ से) थोड़ा पानी गरम करो। इंजेक्शन लगाना होगा। (डाक्टर इंजेक्शन की तैयारी करता है। रधिया की माँ चली जाती है।)

डाक्टर—([illegible]) ज्ञात पड़ता है आपको कहीं देखा है।

कन्हैया—आप शायद लाहौर से आए हैं ? मैं वहीं का रहनेवाला हूँ।

डाक्टर—मेरे एक साथी डाक्टर की शकल आपसे मिलती है। वे बेचारे फौजी नौकरी में चले गए और लौटकर नहीं आए।

कन्हैया—हाँ, मेरे एक भाई डाक्टर थे। फौज की नौकरी में भी थे। उनका कोई समाचार नहीं मिला।

डाक्टर—वह बचपन से मेरे मित्र थे। तुम नहीं जानते—मैं भी इन्हीं अछूत कहे जानेवालों में था—लेकिन लोगों के अत्याचारों ने मुझे तंग कर दिया। ईसाई हो जाने पर अब सभी मुझे आदर देते हैं।

कन्हैया—लेकिन अछूत से ईसाई हो जाना तो इस बीमारी का इलाज नहीं, डाक्टर साहब! हमें तो ऊँची जातिवालों के हृदय बदलने की और अछूत कही जानेवाली जातियों का रहन-सहन बदलने की जरूरत है। मेरे जैसे पगलों को दुतरफा लड़ाई करनी पड़ती है—इधर इनकी गिरी हुई आत्मा को उठाना पड़ता है—उधर उनके अत्याचारी हृदय को बदलने की कोशिश करनी पड़ती है।

डाक्टर—अर्थात् आप दोनों का सुधार कर रहे हैं।

(रधिया की माँ पानी लेकर आती है। डाक्टर इंजेक्शन लगाता है। इतने में पचकौड़ी आता है)

पचकौड़ी—(डाक्टर से) डाक्टर साहब! मेरे लड़के की हालत फिर बिगड़ गई है। आप इसी समय चलने की कृपा करें।

डाक्टर—लेकिन मै तो भगी हूँ—और मेरी दवा से तो आपका धर्म

पंचकौडी—मुझ पर दया करो डाक्टर जी। मै भूल पर था।

डाक्टर—आपके घर जाने से मेरा धर्म नष्ट होगा। मैं नही जाऊँगा। आपने मेरी एक बहन का अपमान किया है।

रधिया की माँ—वैद्य जी ने मेरे घर आकर अपना धर्म तो भ्रष्ट कर ही लिया।

डाक्टर—वैसे तो मुझे अपने घर बुलाकर और छूकर ही इनका धर्म जाता रहा।

पचकौड़ी—महाराज, क्षमा।

रधिया—मनुष्य का धर्म दया करना है—और डाक्टर का विशेषकर। ये अपना धर्म भूल गए लेकिन आप अपना धर्म नही भूलिए। जाइए—इनके लड़के के जरूर प्राण बचाइए।

कन्हैया—[पंचकौडी से] देखा, जिन्हे आप नीच कहते है उनका हृदय कितना ऊँचा होता है ?

डाक्टर—लेकिन वैद्य जी, आप मेरी बहन के पैर छूएँ, तभी मै आपके घर चलूँगा।

(पचकोडी रधिया की मॉ के पैरो मे गिरने लगता ह।
रधिया की माँ हट जाती है।)

रधिया की माँ—आप क्यों मुझे पाप मे घसीटते हैं ? वैद्य जी। कुछ भी हो हमारे लिए तो आप सदा बडे है।

कन्हैया—[वैद्यजी को उठाता है] सुबह का भूला शाम को भी घर लौट आए तो वह भूला नही कहलाता।

[पटाक्षेप]

र ज नी

परिचय

इस नाटक के लेखक डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, नाटककार और आलोचक हैं। आपको कई रचनाओं पर पुरस्कार प्राप्त हो चुके है। आप प्रयाग विश्वविद्यालय मे हिन्दी साहित्य के अध्यापक है। "पृथ्वीराज की आँखे', 'रेशमी टाई' 'चारुमित्र' 'विभूति' आदि एकाकी नाटकों के सग्रह आपके छप गये हैं। इनमे से अधिकतर नाटक रंगमच पर खेले भी जा चुके है।

'रजनी' नाटक का सर्वप्रथम अभिनय प्रयाग विश्वविद्यालय की महिला सभा के वार्षिकोत्सव पर १६४१ मे हुआ था। रजनी गभीर स्वभाव की एक शिक्षिता स्त्री है। उसे पुस्तकों से बहुत प्रेम है और वह आजकल के अनेक युवक-युवतियों की तरह चाहती है कि समाज के बन्धनों से स्वतत्र होकर अकेले मे जीवन बिताये। वह परिवार मे रहना नहीं चाहती। उसका पिता उसे छोड़ कर चला जाता है। उसकी सहेली कनक जिसे रजनी रूढियों की दासी समझती है, वापस घर जाने वाली है। कनक का भाई आनन्द भी रजनी के विचारों से सहमत है परन्तु वह यह नही मानता कि जब तक स्त्रिया अपनी रक्षा आप न कर सके वे समाज से निरपेक्ष रह सकती हैं।

पिता और सखी से विलग होकर रजनी उदास हो जाती है। अकेलापन उसे काटने को दौडता है। उसे रात भर नीद नही आती, पड़ोस मे एक असहाय बुड्ढे की लडकी को डाकू उठा ले

जाते हैं। रजनी घबरा जाती है और मन ही मन अपने किये पर पछताती है। इतने में आनन्द यह समाचार सुना जाता है कि इसने डाकुओं से बूढ़े की लड़की को छुड़ा लिया है। रजनी को विश्वास हो जाता है कि स्त्री के लिए परिवार से अलग रहना असम्भव सी बात है। वह निर्णय करती है कि मैं भी उनके साथ घर जाऊँगी। स्त्री पिता, पति, पुत्र तथा पड़ोसी की सहायता के बिना अपनी रक्षा तब तक नहीं कर सकती जब तक वह शक्ति की देवी भैरवी या दुर्गा न बन जाय।

युवकों के लिए भी इस में शिक्षा है, प्रत्येक युवक का कर्तव्य होना चाहिये 'विपत्ति में लोगों की रक्षा करना, आपत्तियों का सामना करना, जिदगी से लड़ना, समाज को ऊपर उठाना।'

नाटक की भाषा सरल, मँजी हुई और चलती हुई है।

[काश्मीर प्रदेश। एक पहाड़ी का समतल भाग जैसे सौंदर्य साकार हो गया है। चारों तरफ फूलों के पौधे और लताएँ। एक सम्भ्रान्त परिवार यहा कुछ दिनो के लिए वायु-परिवर्तनार्थ आया था। परिवार में वृद्ध पिता, युवती पुत्री, दो नौकर और एक नौकरानी थे। आज दोपहर वृद्ध पिता, एक नौकर के साथ, घर लौट गए। अब यहा पर केवल पुत्री, एक नौकर और एक नौकरानी है। युवती का नाम है रजनी। अठारह वर्ष के लग-भग उसकी आयु होगी। गौर वर्ण, सुन्दर मुखमुद्रा और दुबला शरीर। वह सफेद सिल्क की साड़ी पहने हुए है। माथे मे बिंदी और अन्य साधारण शृंगार। उसका कुछ गम्भीर व्यक्तित्व है।

रजनी के तम्बू से कुछ दूर पर एक दूसरा परिवार ठहरा हुआ है। उस परिवार मे भी एक युवती है। उसका नाम है—कनक। आयु लग-भग रजनी के बराबर ही है। वह नीली रेशमी साड़ी पहने हुए है और फूलो से अपना शृंगार किये है। ज्ञात होता है, वह वनबाला है। प्रसन्नता की रेखा ने उसके मुख को खिला दिया है। कनक और रजनी में मित्रता हो गई है। दोनों ही प्रवास में है और समीप रहने के कारण दोनो मे परिजनो का सा स्नेह हो गया है। कभी-कभी कनक रजनी के यहा आकर समय बिताने के लिए बैठ जाती है। रजनी कनक के यहा अपेक्षाकृत कम जाती है। किन्तु जब दोनो मिलती है तब दोनों मे प्राय. कुछ विवाद छिड़ जाता है।

रजनी—ओह! कनक!

कनक—इसी फूलों के देश काश्मीर में आकर भी पढ़ना!

र०—(अंगड़ाई लेती है) आओ, बैठो। (पुस्तक बन्द करती हुई) और क्या करूँ कनक।

क०—(बैठते हुए) काम की कुछ कमी है रजनी? हवा के झोंकों से झूमती हुई सफेदा की टहनियों को देखा है? खुशी से झूमते रहना उनका काम है। मानसबल की मछलियों को देखा है? लहरों की लची कोरों में चितवन की तरह मचलती हैं।

र०—मै मछली नहीं हूँ कनक।

क०—सो तो एक जंगली भी कह सकता है। लेकिन मैं कहती हूँ कि वे सहेलियाँ अच्छी हैं जो किताबें नहीं पढ़तीं गम्भीरता से कुर्सी पर नहीं बैठतीं। जानती हैं कि भगवान ने जो छोटा-सा जीवन दिया है उसमे खेलना और खुश रहना—बस यही दो बातें हैं।

र०—अगर यही होता तो दुनिया में कुछ काम ही न हुआ होता। वह एक महफिल हो जाती और जो जितने जोर से हँसता वह उतना ही बड़ा आदमी होता।

क०—मूर्खता से हँसना तो रोने से भी बुरा है रजनी। उससे तो तुम्हारी गम्भीरता अच्छी। लेकिन जीवन का आनन्द लेना जीवन को पहचानना है। अच्छा यह देखो, यह फूल है। (फूल हाथ में लेती है) जरा इसे पैरों से कुचल दोगी? (पैरों के पास फेंकती है।)

र०—वाह, ऐसी सुन्दर चीज पैरों से कुचली जा सकती है? (फूल कनक के केशों में लगाती है।)

क०—यही तो तुम कर रही हो रजनी! यह जीवन फूल की तरह खिला हुआ है, इसे तुम गम्भीरता के पैरों से कुचल रही हो, धूल मे मिला रही हो।

र०—लेकिन कनक, तुम समझती हो कि इस जीवन के फूल मे काँटे नहीं है?

क०—होंगे, उन्हें निकाल कर फेंक दो। लेकिन तुमने तो जीवन के फूल को ही काँटा बना रक्खा है। गंभीर, मौन, उदास—तुम्हारी ये सूरतें तो जैसे जीवन के दिल मे त्रिशूल की तरह चुभी हुई हैं। अगर ऐसी बात है तो यह सितार क्यों यहाँ रख छोड़ा है।

र०—पिता जी मेरे लिए लाये थे। मुझे अच्छा तो नहीं लगा। मैंने सब बार उसके नोट डाले।

क०—बहुत अच्छा किया। मैं भी अगर एक प्रार्थना करूं, मानोगी?

र०—क्या?

क०—ये किताबें मुझे दे सकती हो? थोड़ी देर के लिए?

र०—क्यों?

क०—मैं इन्हें सरस्वती के साथ नहलाना चाहती हूँ!

र०—हां, क्या कह रही हो?

क०—नहीं, शायद इन्होंने कभी स्नान नहीं किया। निखर उठेंगी।

(मंगल किताबों का ढेर लेकर आता है)

म०—सरकार, ये किताबें बाहर पड़ी थीं। उन्हें अंदर रख दूं?

र०—मंगल! अच्छा, इन्हें उस कोने में सजा दे।

(मंगल किताबें सजाकर रखने लगता है)

क०—यह किताबों का 'प्रोसैशन' कहां से आ रहा है?

र०—प्रोसैशन? (किंचित हँसकर) कुछ नहीं। शाम को तंबू से बाहर पढ़ रही थी। वहीं ये किताबें रह गई थीं।

क०—शाम को भी पढ़ना। तुम तो रजनी, एक काम करो। सारी किताबों को अपने कपड़ों पर छपवा लो। कहीं भी जाना हुआ, किताबों को पहने हुए जा रहे हैं। किताबों को उठाने-रखने के कष्ट से बच जाओगी। जिस विषय को पढ़ना हुआ उसी विषय की साड़ी पहन ली।

र०—कनक, आज मैं उदास हूं और तुम बाते घडती जा रही हो।

क०—तुम उदास क्यों हो ? इसी लिए ठीक बात नही कर रही हो।

र०—बहुत कोशिश करती हूँ कि उस पर सोचूँ ही नहीं लेकिन. .उदासी आ ही जाती है।

क०—क्यों ?

र०—आज पिताजी घर वापस चले गये।

क०—किस लिए ?

र०—मैंने उन्हें नाराज़ कर दिया।

क०—नाराज़ कर दिया ?

र०—हाँ, नाराज़ कर दिया। उनका अपमान कर दिया।

क०—अपमान कर दिया। कैसे ?

र०—मैंने अपने जाने तो नही किया, लेकिन उनके ख्याल से अपमान हो गया।

क०—किस बात से ?

र०—मैंने उनसे कहा था—पिताजी, दुनियाँ बहुत धोकेबाज है। बहुत बनी हुई है। उसमे सिर्फ स्वार्थ ही स्वार्थ है। भाई भाई मे स्वार्थ है। पुरुष और .

क०—शायद तुमने यह भी कहा होगा कि पिता पुत्री मे भी स्वार्थ है।

र०—हाँ, यह भी कहा। वे कहने लगे—मेरा क्या स्वार्थ है ? मैंने कह दिया कि मेरे योग्य होने से आपकी चिंताएँ कम हो जायँगी और समाज में आपकी मुश्किलें आसान हो जायँगी।

क०—यह ठीक नहीं है, रजनी।

र०—ठीक क्यों नहीं? (उठ खड़ी होती है।) लड़की में, खराब निकल जाने पर किस पिता ने उसका तिरस्कार नहीं किया? पिता तो ऐसी लड़की का मुँह देखना भी पसन्द नहीं करता। अगर आज मैं अपनी मर्यादा छोड़ दूँ तो पिताजी का प्रेम क्या बालू की दीवार की तरह एक मिनट में नहीं गिर पड़ेगा? फिर वह प्रेम कहाँ रह गया? और सुनो कनक, यह सारी चीज़ें समाज ने मनुष्य को दी हैं—जैसे समाज ने जो जंजीरों में कसा हुआ है, पुरुष स्त्री पर अधिकार दिखलाता है जैसे जीवन में अधिकार के सिवाय कुछ है ही नहीं। जीवन तड़पता है और अधिकार उस पर हँसता है, कनक। अगर यह अधिकार न होता तो क्या स्त्री पुरुष का सत्कार न करती? पुत्र पिता का आदर न करता?

क०—ठीक है, लेकिन रजनी, तुम जैसे सभी तो नहीं हैं। कहीं पुत्र पिता को पीट देता या स्त्री पति से कहती—मेरी बिना आज्ञा आफिस मत जाओ—यूनिवर्सिटी में पढ़ाने मत जाओ।

र०—तो ऐसा क्या अब नहीं होता? लोगों को आफिस में देरी हो ही जाती है। यूनिवर्सिटी में लड़के बैठे रहते हैं और प्रोफेसर ठीक वक्त पर आ नहीं सकते।

क०—इसीलिए तो मर्यादा की सख्त जरूरत है। "अथारिटी" का काम यही है। संसार के काम को चलाने के लिए अधिकार की आवश्यकता है।

र०—लेकिन उसमें जीवन का उत्साह जो खराब हो जाता है, कनक। पुत्र बिना किसी शासन के जो प्यार करता वह तो हृदय से उमड़ता हुआ प्यार होता। स्वभावतः स्त्री जैसा प्यार

करती, क्या उसी तरह का प्यार एक डरी हुई, दबी हुई, स्त्री करेगी? यह समाज का अन्याय है, कनक।

क०—इसे अन्याय नहीं कह सकती। बंधन तो इसलिए चाहिए कि उससे आदमी स्वतंत्र हो सके। अपनी बेतरतीबी से बढ़ती हुई इच्छाओं को रोक कर वह उन्नति के रास्ते पर क्या नहीं बढ सकेगा? तुम एक पक्षी को देखती हो? वह केवल अपने दो पंखों के बंधन में बंधा हुआ है लेकिन उन्हीं बंधनों से वह सारे आकाश की हजारों कोसों की दूरी स्वतंत्रता से पार कर जाता है। रजनी। बंधन को उन्नति के रास्ते में रोड़ा मत समझो। बंधन को स्वतंत्रता का सहायक समझो।

र०—ये सब कवि की कल्पनाएँ हैं।

क०—तो इसीलिए तुम्हारे पिताजी नाराज हो गये?

र०—नाराज क्या हुए, झुँझलाकर रह गये। मैंने कहा—पिताजी, मैं अकेली रहना चाहती हूँ।

क०—पिता जी ने क्या कहा?

र०—उन्होंने कहा—बेटी, माँ तो तेरी छुटपन में ही चली गई थी। अब तू ही एकमात्र मेरा सहारा थी सो तू ऐसी बात कहती है।

क०—उस वक्त पिताजी की आँखों में आँसू जरूर रहे होंगे।

र०—हाँ, उनकी आँखें कुछ गीली जरूर हो गई थीं।

क०—तो तुम अकेली रहना चाहती हो?

र०—हाँ, मैं रहके देखना चाहती हूँ।

क०—कबतक?

र०—कनक, समाज मुझे अच्छा नहीं लगता। माँ का प्रेम मैं जानती नहीं। मुझे समझने का अवकाश पिताजी को है नहीं।

मैं तो जीवन से ऊब रही हूँ। चाहती हूँ कि किसी एकान्त स्थान में सोचूँ कि मैं क्या करूँ। मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता, कनक। मैं ही तो पिताजी को अपने साथ यहाँ लाई थी, आबहवा बदलने के बहाने। मैंने अपने मन में सोच लिया था कि उन्हें यहाँ से वापस कर दूँगी।

क०—तो अब यहाँ तुम्हारे साथ कौन है?

र०—केसर और मंगल।

क०—नौकरानी और नौकर, केवल।

र०—हाँ।

क०—तो यहाँ अकेली रहकर क्या करोगी?

र०—पढ़ूँगी। सोचूँगी। मुझे ऐसा मालूम होता है कनक, कि जीवन में कोई नयापन नहीं है। पुराने जमाने में आदमी जैसा रहता चला आया है उसी तरह वह रहता है। उसमें सारी वस्तुएँ बासी हो गई हैं मुझे उनसे एक तरह की दुर्गंध आ रही है। जीने के ढंग में कोई नयापन नहीं है। इसीलिए मैंने स्कूल की नौकरी छोड़ दी।

क०—स्कूल की नौकरी छोड़ दी। अब पिता जी को भी छोड़ दिया। विवाह तो अभी हुआ नहीं अन्यथा आगे चलकर उन्हें भी ··

र०—कुछ नहीं होने का, कनक। मैं तो देखती हूँ कि परिवार में डूबा हुआ आदमी कुछ नहीं कर सकता। जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करता हुआ सोता है, जागता है। उसे विवाह करना पड़ता है, बच्चों का भरण-पोषण करना पड़ता है। वृद्ध होना पड़ता है और मर जाना पड़ता है। एक ही रास्ता, एक

ही चाल, एक ही दूरी। मुझे इस से घृणा हो गई है, कनक। मै यह कुछ नहीं चाहती।

क०—तो रजनी, तुम चाहती क्या हो ?

र०—मैं क्या कहूँ कि क्या चाहती हूँ। मै समाज का बंधन नहीं चाहती। मैं ममता और मोह के बंधनों को तोडकर स्वतंत्र विचारों मे विश्वास रखती हूँ। कनक, जब ऐसा होगा तो संसार कितना अच्छा होगा।

क०—बहुत अच्छा होगा। पिता पुत्री से कहेगा, घर चलो। पुत्री कहेगी—पिताजी, नमस्कार। वह पुरुष के बदले पुस्तकों से प्रेम करेगी। हँसने खेलने के बदले गम्भीर रहेगी, कहेगी—(गाल फुलाकर) मैं समाज का बंधन नहीं चाहती।

र०—मै तुम पर दया करती हूँ, कनक, तुम क्या समझो ? रूढ़ियों मे बंधी हुई कनक, तुम क्या समझो कि स्वतंत्र विचार क्या होते हैं। अंध-विश्वासों की जंजीरों मे तुम्हारे प्राण भी कस गये है। बरसों की दासता में पड़ी हुई स्त्री इन बातों को देर मे समझेगी, तुम अभी नहीं समझ सकतीं। जाओ, फूलों के गजरे बनाओ और दुलहिन बनो।

क०—रजनी, अब इस बकझक को छोडो। बोलो, तुम यहां कब तक रहोगी ?

र०—कह तो चुकी हूँ। हमेशा।

क०—अकेले ?

र०—और क्या ? सोचूँगी, समझूँगी, पढ़ूँगी कि समाज को कैसे बदलना चाहिए। बी० ए० पास करने के बाद मैंने अपना सारा समय यही सोचने मे लगाया है। हमारे समाज मे सब से पहिले पिता लडकी को कमजोर बना देता है। वह समझ

लेता है कि लड़की का विवाह करना है। उसे घर चलाना सिखाते हैं। यह सब इसलिए कि लड़की का विवाह अच्छी जगह कर सकें और फिर वह लड़की पति के घरवालों की दासी हो जाय उन्हें खाना पकाकर खिलाये और सब गाली खाये। यह सब कुछ नहीं होने का। मुझे भी पिता जी ने यह सब कुछ सिखलाने की कोशिश की लेकिन मैं उन विचारों की क़ायल नहीं। अब ऐसी बातें सोचकर निकालूँ कि मनुष्य जीवन में कोई दास न हो, किसी का दास न हो। मैं परिवार और समाज नहीं चाहती। मैं मनुष्य के लिए पूरी स्वतन्त्रता चाहती हूँ। कनक, बंधन मनुष्यता का कलंक है।

क०—इतनी सब बातों में तुम्हें पिता जी की याद नहीं आयेगी?

र०—आयेगी क्यों नहीं लेकिन मुझे उस याद को भूल जाना होगा। मैं अपनी कमज़ोरी पर विजय पाना चाहती हूँ, कनक आज उदास थी क्योंकि पिता जी आज ही गये हैं, लेकिन दस पंद्रह दिन बाद यह रजनी दूसरी ही रजनी होगी।

क०—तब तो तुम मुझे भी भूल जाओगी।

र०—तुम्हें कैसे भूल सकती हूँ?

क०—जैसे पिता जी को भूलने की कोशिश करती हो।

र०—(कुछ अप्रतिभ होकर) लेकिन भूलने का अर्थ यह नहीं है कि मैं तुम्हारी याद भी न करूँ। हाँ, तुम्हारी याद से रोने के बदले मैं हँसना चाहती हूँ।

क०—अच्छा तो सुनो, हम लोग भी कल जा रहे हैं।

र०—अरे, कल ही?

क०—हाँ माता जी से पूछ कर तुम से मिलने आई थी तुम्हारी बातों में उलझ गई। मैंने सोचा कि ऐसी बातें अब कब सुनने को मिलेंगी। सुनती रही, अब देर हो रही है।

र०—अरे, तुम भी जा रही हो।

क०—हाँ, भाई का एग्जामीनेशन पास आ गया है। उन्हे
कलीफ होती होगी खाने पीने की। उन्होंने अपनी जिद मे अभी
क शादी भी नहीं की। नहीं तो ऐसी तकलीफ उन्हे होती ही
न्यों? कुछ लडके कैसे आँख मूँद कर शादी करा लेते है—
रे भाई साहब

र०—शादी नहीं की तो क्या बुरा किया।

क०—उनके विचार कुछ-कुछ तुम्हारे विचारों से मिलते है।
कहते है, मै विवाह करूँगा ही नहीं और करूँगा तो पहले
लडकी को खूब समझ लूँगा। मैंने कहा—ऐसा करोगे साहब तो
लडकी तुम्हें पहले समझेगी। (दोनो हँस पड़ती हैं।)

र०—कनक, तुम अभी नहीं जा सकती।

क०—लेकिन रजनी, हम लोगों को जाना ही होगा। भाई
कहते है कि खाना अच्छा और वक्त पर न मिलने से पढाई हो
ही नहीं सकती। हम लोगों को तो और जल्दी घर लौट जाना
चाहिए था।

र०—(सोचती है) खाने पीने की तकलीफ। तभी तो मै
करती हूँ सारा जीवन परिवार की चिता मे फिर जीवन मे काम
क्या करोगी? परिवार की चिंता, परिवार की दासता।

क०—यह दासता नहीं है रजनी। माता पुत्र को, बहिन भाई
को, स्त्री पति को खिलाने मे दासी नहीं हो जाती। यह तो ईश्वर
की दी हुई ममता है। यह तो ईश्वर का वरदान है।

र०—(सोचती हुई) पुत्र ..भाई पति (सोचती है।)

(बाहर से आवाज आती है, रजनी और कनक सुनती हैं)

कनक — ओ कनक — अरे सुनो तो आदमी रजनी ...
टूट गयी है ?

मगल की आवाज—जी हाँ, सरकार ।

बाहर की आवाज—तो कनक है अन्दर ?

मगल की आवाज—जी हाँ, सरकार ।

बाहर की आवाज—कहो कि आनन्द बुलाने आये हैं ।

क०—(उत्सुकता से) मेरे भाई की आवाज !

र०—तुम्हारे भाई की आवाज । तुम्हारे भाई यहाँ कैसे ?

क०—वे ही तो हम लोगों को लेने आये हैं । चाचाजी या
से सीधे जा रहे हैं नैनीताल । उन्होंने भाई साहब को लिखा
तुम आकर सब को ले जाओ वही आये हैं ।

(मगल का प्रवेश)

म०—आनन्द बाबू आये हुए हैं ।

क०—बुला लूँ भीतर ?

र०—(अव्यवस्थित होकर) हाँ, हाँ, बुला लो ।

क०—उन्हें भेज दो भीतर । (मगल जाता है) भाई साह
बहुत अच्छे हैं । शिकार खेलने का शौक । कहते हैं—पढ़
और शिकार खेलना यही उनके जीवन के दो पहिये हैं ।

(आनंदकिशोर का प्रवेश । २४ वर्ष का नवयुवक है, सुन्दर औ
सुडौल । मर्सराइज्ड सिल्क का निकर और नीला सर्ज का गर्म कोट पह
हुए हैं । सिर पर एक स्कार्फ । हाथ में गलव्स और पैरों में पेशावरी स्लं
पर । चलने में निश्चयात्मकता । बोलने में मधुर और दृढ़ । शिष्टाचार
नियमों में सधा हुआ । व्यवहार में रुचि और उत्साह । आत्मविश्वास
पूर्ण और प्रसन्न तथा हँसमुख । बोलने में तत्पर और स्पष्ट । उसके हा
में बन्दूक और कन्धे से कमर तक लटकती हुई कार्ट्रिजेज का बैल्ट ।)

आ०—मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

क०—आइए, भाई साहब।

(आनन्द आगे बढ आता है। कनक परिचय कराती है।)

क०—मेरे भाई श्री आनन्दकिशोर जी, अंग्रेजी एम० ए० के विद्यार्थी और कुमारी रजनी देवी बी० ए०।

(दोनों परस्पर नमस्कार करते हैं।)

आ०—आपके दर्शन कर प्रसन्नता हुई।

र०—मुझे भी।

आ०—धन्यवाद।

र०—बैठिए। कुर्सी लीजिए। ओह, मैं मंगल को पुकारती हूँ।

आ०—नहीं, मंगल की क्या जरूरत, यह तो मैं ही कर सकता हूँ। (कोने से कुर्सी उठाकर सामने रखता है।) आप बेंत वाली कुर्सी पर बैठ जायँ।

र०—नहीं, मैं ठीक हूँ।

आ०—नहीं, आप भी बैठें। हम लोग तो जंगली जानवरों की तरह घूमने फिरने वाले हैं। हमारा क्या।

(रजनी के लिए बेंत की बड़ी कुर्सी रख रजनी की कुर्सी अपने लिए रखता है।)

र०—आपके लिए जलपान मंगवाऊँ ?

आ०—नहीं, धन्यवाद। मुझे अभी कुछ नहीं चाहिए।

क०—भाई साहब का जलपान किसी दूसरी चीज से होता है। क्यों भाई साहब, आज कितनों का उद्धार किया ?

आ०—कनक, आज कुछ भी हाथ नहीं आया। आठ मील घूमने पर भी बंदूक कंधे से न उतर सकी। मालूम नहीं, परिंदों ने भी आर्य्यसमाजियों की तरह संगठन कर लिया था। कोई

मिला ही नहीं। रजनी देवी, माफ कीजिए, मैं शिकार से लौटा ही था कि मालूम हुआ, कनक यहाँ है। मुझे सीधे यहीं चला आना पड़ा। मैं कपड़े भी नहीं बदल सका।

र०—तो हानि क्या है? शिकारी की पोशाक बुरी नहीं लगती।

आ०—धन्यवाद।

क०—लेकिन एक बात तो मैं कहूँगी भाई साहब। यहाँ साहित्य और समाज की बातें होती हैं। यहाँ शिकारी की पोशाक में आना मना है। यह सरस्वती-मन्दिर है।

आ०—(फर्श पर पड़े हुए फूलों को देखते हुए) ये बिखरे हुए फूल इस बात का समर्थन करते हैं। लेकिन मेरी बेबसी देखते हुए रजनी देवी जी क्षमा करेंगी।

र०—इसमें क्षमा की कौन सी बात? यह तो सब कनक की शैतानी है। मुझे यों ही बनाती है।

आ०—नहीं, रजनी देवी जी, आज सुबह कनक आपकी बहुत तारीफ कर रही थी। कहती थी कि आपने समाज और साहित्य पर इतना विचार किया है कि आप आसानी से कुछ पुस्तकें लिख कर समाज को ठीक रास्ते पर ला सकती हैं। यह कहती है कि यों मैं इनसे चाहे हँसी कर लूँ लेकिन दिल से तो तारीफ ही करती हूँ।

र०—कनक मेरे जीवन के बिलकुल पास आ गई है। मुझ पर उसका प्रेम होना स्वाभाविक है।

आ०—अच्छा, और सुनिए। आपके विचार जानकर मुझे बहुत खुशी हुई। मैं भी बहुत कुछ इन्हीं विचारों को माननेवाला हूँ। 'समाज ने लोगों को अंधा कर दिया है। पुरानी परम्पराओं के

ामने मनुष्य की सच्ची भावनाएँ उभरती ही नहीं है। वह ाँखे बंद कर पुराने रास्ते पर चल रहा है।

क०—आप दोनों महामहोपाध्याय है। मेरी समझ मे तो ाप लोगों की बातें आती ही नही है।

आ०—अभी तुम बच्ची हो। इन बातों को क्या समझो? जनी देवी की भाँति सोचो, समझो, तो कुछ समझ में आये।

क०—मेरे मन मे तो सुख दु ख की जो बाते आप से आप आ जाती हैं, वे ही अच्छी लगती है।

आ०—ठीक है, लेकिन दुनिया अब बहुत आगे बढ चुकी है, कनक। मैंने तुम्हें इतनी बार समझाया कि तुम वेल्स पढ़ लो तो तुम ठीक तरह से सोचने लगो लेकिन तुम्हें पढ़ने की फुर्सत ही नहीं। हाँ, मै एक बात जरूर कहूँगा, रजनी देवी। मेरी कनक को अपनी जिम्मेदारी की सारी बातों पर पूरा अधिकार है और फिर इसके साथ बैठकर कोई उदास रह ही नहीं सकता। इतनी हँसी की बाते करती है कि मालूम होता है—आपके पास एक निर्मल नदी बह रही है।

क०—जिसमे भाई साहब डूबकर भी बच जाते है। (स्वर बदल कर) भाई साहब, ये बाते रहने दीजिए। आप किस लिए मेरी खोज मे आये थे?

आ०—ओह। मै भूल ही गया, कनक। तुम्हे माता जी याद कर रही थीं।

क०—तब तो मुझे जाना चाहिए। रजनी, अब मै जाऊँगी।

र०—कुछ देर और ठहरो न।

क०—जाने किस काम के लिए माताजी बुला रही है।

र०—जाओगी?

क०—हां, और सुनो अब शायद हम लोग न मिल सकें। हम लोग सुबह पांच बजे ही यहां से जा रहे हैं। तुमसे शायद मिलना न हो सके। यह लो मेरी भेंट। (माला पहनाती है)

र०—तुम्हारी याद मुझे भूल नहीं सकती, कनक ! तुम मुझे याद रक्खोगी ?

क०—तुम्हें कैसे भूल सकती हूं, रजनी। तुम्हें भूलना अपने आपको भूलना है।

आ०—अच्छा, तो मैं भी चलूं। (उठ खड़ा होता है)

र०—आप बैठिए ना, आपको कौन-सी जल्दी है ? आपकी बातें मुझे बहुत अच्छी लग रही हैं। आप थक भी गये होंगे।

आ०—धन्यवाद। अच्छा कनक, मैं थोड़ी देर बाद आता हूं। (रजनी से) आपका नौकर है ?

र०—हाँ, हां, मैं उसे कनक के साथ भेज देती हूं। (पुकार कर) मंगल !

म०—जी, सरकार।

र०—जरा कनक जी के साथ जाओ। इन्हें इनके डेरे तक पहुँचा दो।

म०—बहुत अच्छा !

क०—रजनी ! मेरी गलतियां भूल जाना और (कुछ कह नहीं सकती।)

र०—अरे कनक, तुम मेरी प्यारी बहिन हो। तुम कैसी बातें करती हो।

(कनक मौन नमस्कार करके जाती है। रजनी उसे दरवाजे तक जाकर देखती है।)

र०—(लौटते हुए) कनक बहुत अच्छी है। मै इसके प्रेम मे अपने आपको भूल गई थी। मैंने समझा था कि ससार मे मेरी एक बहिन भी है।

आ०—यह आपकी उदारता है। नहीं तो इस दुनियाँ मे कौन किसे मानता है। सब अपने मतलब से प्रेम करते है।

र०—आप कितनी सच्ची बात कहते है। मै भी यही सोचती हूँ लेकिन कनक को प्यार करने मे मेरी उदारता नहीं, यह तो कनक का अधिकार है।

आ०—(बैठते हुए) आप इसके बाद मिलती तो रहेंगी कनक से ?

र०—मै कह नहीं सकती।

आ०—क्यों ?

र०—मैंने अपने जीवन का रास्ता ही बदल लिया है।

आ०—ओह, रास्ता बदल लिया है ? मै जान सकता हूँ ?

र०—आप मेरे विचारों से बहुत कुछ सहमत है इसलिए मै आपके सामने अपने हृदय की बात रख सकती हूँ।

आ०—हाँ, हाँ, ज़रूर।

र०—आप जानते है, मैंने आपको रोकने का साहस क्यों किया। मै इस समय बिल्कुल अकेली हूँ किन्तु मै आपसे मिल रही हूँ। शायद समाज की कोई दूसरी लड़की इन परिस्थितियों मे आपसे न मिलती।

आ०—मै आपसे सहमत हूँ।

र०—मैंने सब परिस्थितियों का बंधन तोड दिया है। मै बिल्कुल अकेली हूँ।

आ०—आपके परिवार के लोग ?

र०—मेरे परिवार में है ही कौन ? माँ बचपन में ही चल बसी थी। भाई-बहन कोई है ही नहीं। पिताजी हैं, वे भी आज काल पर चले गये।

आ०—हाँ, मैंने कहा था कि आप पिताजी के साथ हैं। फिर पिताजी आपको छोड़कर क्यों चले गये ?

र०—वे जाना तो नहीं रहे थे, लेकिन मैंने ही उनसे चले जाने को कहा। मैं उनका आदर करती हूँ पर उनके विचारों से सहमत नहीं हूँ।

आ०—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि उनके विचार कैसे हैं ?

र०—वह मुझे समाज के बंधन में बाँधना चाहते थे। मैंने उससे इन्कार कर दिया। मुझे समाज का बंधन पसंद नहीं है आनन्दजी। हमारा समाज बहुत गिरा हुआ है। मैं उस समाज से दूर रहना चाहती हूँ।

आ०—इसमें शक नहीं कि समाज के बहुत से बंधन बुरे हैं जो मनुष्य को आगे बढ़ने से रोकते हैं।

र०—और मैं समझती हूँ कि इन बंधनों ने ही हमारे समाज को खराब कर रक्खा है।

आ०—रजनी देवी, आपके इन विचारों को सुनकर तो मुझे ज्ञान होता है कि आपने हमारे समाज की दशा को ठीक पहिचाना है। और आप ही आगे बढ़ेंगी समाज को उठाने के लिए। मैं आपसे बिलकुल सहमत हूँ।

र०—और मैं कहती हूँ, आनन्दजी, कि हमारे समाज का गिरना उतना बुरा नहीं है जितना कि गिरकर उसका न उठना है। मनुष्य अभी तक का सोचा हुआ रास्ता क्यों नहीं बदल देता ? यह

समाज की चिंता क्यों करता है ? हवा का भी कोई समाज है ? सूरज की किरणें भी किसी बंधन में हैं ? आग भी रस्सी से कसी हुई है ?

आ०—रजनी देवी, यह बात तो सही है लेकिन आप यदि क्षमा करें तो मैं एक बात कहूँ कि आप सब कुछ कर सकती हैं लेकिन समाज को छोड़ना एक बड़ी भूल होगी। आप सब कुछ करें लेकिन समाज को न छोड़ें।

र०—जब आप मनुष्य के स्वतंत्र होने पर मुझसे सहमत हैं तो समाज तो उस स्वतंत्रता का बंधन है।

आ०—सही है, लेकिन मनुष्य समाज का एक प्राणी है। वह राबिन्सन क्रूसो बनकर बहुत दिनों तक नहीं रह सकता। उसे समाज के बीच रहना जरूरी हो जाता है। जब वह सभ्यता की चोटी पर चढ़ने की कोशिश कर रहा है तो वह अकेला कैसे रह सकता है ? उसे अपनी बुराइयों से लड़ना है और अपनी कमजोरियों को दूर फेंकना है। क्या आप यह नहीं मानतीं कि आप इस कशमकश से भाग नहीं सकतीं ? इस विज्ञान की उन्नति के काल में जब संसार का एक भाग दूसरे भाग से बिजली के हल्के करेंट से भी जुड़ गया है तब आप इस बढ़ते हुए परिवार से भाग कर कहीं नहीं जा सकतीं और अगर आप एक मिनट के लिए चुपचाप बैठीं कि समाज अपने शरीर से आपको नाखून की तरह काटकर फेंक देगा। समाज की हानि नहीं होगी, आप कहीं की नहीं रहेंगी।

र०—और अगर समाज गलत रास्ते पर हो तो ?

आ०—गलत रास्ते पर होते हुए भी समाज की शक्ति कम नहीं है। आप में शक्ति हो तो समाज से लड़ जाइए। एक नया 'सोशल आर्डर' सामने रखिए। लेकिन समाज से मुँह मोड़कर एकांत में चले जाना तो अपनी हार स्वीकार करना है। यह तो एक

'एस्केप' है। आप भाग कर छिपना चाहती हैं जिसमें समाज की शक्ति का सामना आपको न करना पड़े। मैं तो समझता हूँ आपको पूरी ताकत से इसका सामना करना चाहिए। मेरे सामने भी यही सवाल है। मैं समाज को एक बिगड़ा हुआ जानवर समझता हूँ। अगर मैं इसे पुचकार कर अपने वश में नहीं कर सकूँगा तो इसे ऐसी गोली मार दूँगा कि वह कष्ट से कराहने लगे। मैं इससे अगर दूर भागूँगा तो यह मुझे डरा हुआ मान कर, लपक कर मेरा पीछा करेगा और मुझे बुरी तरह काट लेगा। आप देखती हैं ये निशान? (हाथ दिखाते हुए) ये एक भालू के पंजे हैं। शिकार करते समय मेरा पैर एक गड्ढे में चला गया और मैं पीछे गिरा तो भालू ने समझा कि मैं भाग रहा हूँ। उसने मुझ पर हमला कर ही दिया। लेकिन दूसरे ही क्षण मैंने अपने सधे हुए निशाने से उसे समाप्त कर दिया।

र०—आप बहुत बहादुर हैं।

आ०—धन्यवाद, लेकिन आप सोच लीजिए कि यह समाज आपके यहाँ चले आने पर आप पर हमला करेगा। आपके सामने न जाने कितनी समस्याएँ खड़ी करेगा। संभव है आप पर कलंक भी लगा दे।

र०—मैं इसकी चिंता नहीं करती।

आ०—आपके चिंता न करने से वह चुप तो रहेगा नहीं। समझेगा, वह जो कुछ कह रहा है, सच सही है। तभी तो आप चुप हैं। आप इसे एक तमाचा नहीं मार सकतीं? जो आदमी समाज को तमाचा मार सकता है, समाज उसके सामने कुत्ते की तरह दुम हिलाने लगता है। ऐसा है यह जानवर।

र०—लेकिन यह जानवर रोगी है, इसमे कीडे पड रहे है। इसका अग अग सड रहा है। आप जानते हैं, सडी हुई चीज को पास रखने से बीमारी फैलती है। मै ऐसे सड हुए समाज को क्यों अपने पास जगह दूँ ? इसमे देश के नौजवान लडकों को आगे बढ़ाने की शक्ति नही है। इसमे किसानों की हालत सुधारने की बुद्धि नही है। इसमे लडकियों का विवाह करने की पसदगी नही है। सब कुछ ऐसा हो रहा है जैसे भट्टी की चिमनी से घुट-घुटकर धुआँ निकल रहा हो—जिससे देखने-वालों की आँखें भी अधी हो रही हैं।

आ०—तो इस भट्टी मे दस मन कोयला झोंक दीजिए जिसमें आग की लपट निकल पडे और भट्टी की सारी अधजली चीजे एक बार ही जल जायँ। चुप बैठने से तो धुआ कलेजे तक भर जायगा और आप सास भी न ले सकेंगी।

र०—आपकी बात बहुत हद तक ठीक है, आनन्द जी। लेकिन एक बात है। यह समाज किसी भी नये विचार को अपने भाले की नोक जैसी उँगली उठाकर उसी समय नष्ट कर देता है क्योंकि यह अपनी ही तरफ देखता है। अपने से बाहर देखने के लिए इसके पास आँखे ही नही हैं। फिर यह बूढा समाज अब भी कितना स्वार्थी है! इसकी रुपयों पैसों वाली नीति मुझे पसद नहीं। इस जीवन से ऊपर उठकर इसका आदर्श ही नही है। मामूली सुखों मे वह हँसता है और थोडे से दुःख से ही रोने लगता है।

आ०—यदि सच पूछा जाय तो जीवन का आनद ससार से लड़ने भिडने मे ही है जिसमे कभी हँसना पडता है, कभी रोना पडता है। सुख दुःख तो उसे नहीं होते जो मुर्दा है। पडा है जमीन

पर। कोई कब्र पर रख दे, या फेंक दे। कोई उसे फर्नों की मेज पर रख दे, या कांटों पर डाल दे। उसमें जीवन नहीं है तभी तो ऐसा है।

र०—आनंद जी! मैं मनुष्य के स्थान को सुख दुःख से ऊँचा रखना चाहती हूँ। लता की तरह छा जाना मनुष्य को शोभा नहीं देता। उसे होना चाहिए चट्टान की तरह दृढ़ और अटल। मैं चाहती हूँ कि मनुष्य स्वतन्त्र हो। वह अपनी इच्छा में किसी का दास न हो। अगर वह दास हो तो उसमें और पालतू जानवरों में अंतर ही क्या रहा?

आ०—रजनी देवी, मैं भी मानता हूँ कि मनुष्य स्वतन्त्र हो, लेकिन यदि वह अपने सिद्धान्तों का पक्का है तो वह समाज को तोड़ फोड़ कर फिर से बनाये, नये सिद्धान्त रचे, नये विचार सोचे। ईश्वर देखे कि उसने मनुष्य को दुनिया में कीड़े की तरह नहीं भेजा। भेजा है एक गढ़ने वाले के रूप में। मनुष्य स्वयं ईश्वर बने रजनी देवी। वह अपनी जिम्मेदारी समझे।

र०—यहाँ हम दोनों सहमत हैं, आनंदजी। अंतर केवल इसी बात में है कि आप इन विचारों को रखते हुए समाज चाहते हैं और मैं एकांत चाहती हूँ। समाज दुर्बल है, बच्चे की तरह। उसमें शासित होना मुझे अच्छा नहीं लगता। और फिर सच पूछिए तो पश्चिम की सभ्यता मुझे पसंद ही नहीं है। यह सभ्यता भारतीय नहीं हो सकती। जिस तरह गुलाब का फूल कमल नहीं हो सकता और कमल का फूल गुलाब नहीं हो सकता उसी तरह यह पश्चिमी सभ्यता भी भारतीय नहीं हो सकती। इससे हमारे शरीर को सुख भले ही मिले पर आत्मा को सुख कभी नहीं मिल सकता।

आ०—रजनी देवी, आप विदुषी हैं, आपने बहुत ऊँची बात कही है। मैं तो अब आपका आदर और भी अधिक करता हूँ, आपके इन विचारों के लिए।

र०—धन्यवाद। इसीलिए मैं इस सड़ते हुए समाज से हटकर यहाँ चली आई हूँ। अब जीवन के दिन यहीं बिता देना चाहती हूँ।

आ०—लेकिन रजनी देवी, मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप समाज को चलकर बतलाएं कि आपने इस सभ्यता में बढ़कर भी इसके दोषों को कितनी अच्छी तरह से पहचाना है। आपकी आवश्यकता हमारे समाज को है। संसार के इतिहास को देखिए, जिन जिन विचारकों ने सत्य खोज कर निकाले हैं उन्होंने समाज में आकर उसका प्रचार किया है। गौतम बुद्ध ईसा को देखिए, वे एकांत-सेवी होकर नहीं रहे।

र०—ओह, आप कितने बड़े-बड़े महात्माओं के नाम ले रहे हैं। मेरे विचारों के सिलसिले में इनके नाम जोड़कर इन्हें अपवित्र न कीजिए, आनंदजी।

आ०—आपके विचारों की पवित्रता में किसे विश्वास नहीं होगा? यह तो विचारों का संसार है। यहां विचार से ही आदमी छोटे और बड़े होते हैं।

र०—लेकिन मेरे विचार में अभी शक्ति कहाँ आई है?

आ०—यह शक्ति समाज के भीतर जाकर ही आवेगी। समाज की समस्याएँ समाज में रहकर ही हल की जा सकती हैं समाज से बाहर रहकर नहीं।

र०—व्यक्ति या लोक के लिए ज्ञान की आवश्यकता है आनन्दजी।

आ०—आप भी ठीक कहती हैं, रजनी देवी ! जैसी आप की इच्छा, लेकिन आप मेरे दृष्टिकोण पर भी विचार करें।

र०—नहीं, आप भी ठीक कहते हैं, आनन्दजी। आप जैसा विद्वान मुझे अभी तक नहीं मिला। कितना अच्छा होता यदि हम लोग अधिक मिल सकते।

आ०—रजनी देवी आप मुझे इतना आदर दे रही हैं इसके लिए धन्यवाद, लेकिन हम लोग कल ही जा रहे हैं।

र०—ओह, यदि मुझे ज्ञात होता कि आप इतने ऊँचे विचार के हैं तो मैं कनक से कह कर उसे और आप लोगों को कुछ दिन और रोकती। सच ! आपसे मिलकर प्रसन्नता हो गई है।

आ०—मुझे भी आज बहुत आनंद हो रहा है। आपने मेरे नाम को सार्थक कर दिया। मैं अभी तक बहुत-सी पढ़ी-लिखी लड़कियों से मिला, पर आपके समान बुद्धि मैंने किसी में भी नहीं पाई। आपसे मिलकर मैं समझ रहा हूँ कि मेरा यहाँ आना सफल हुआ।

र०—आप मुझे लज्जित कर रहे हैं। आपके बहुत से विचार मेरे मस्तक में घूम रहे हैं और मैं प्रभावित भी बहुत हुई हूँ। आप पत्रों से तो मुझे अपने विचार लिखते रहेंगे ? मेरा पता. .

आ०—मुझे मालूम है। अच्छा, आज्ञा दीजिए।

र०—आपको बहुत देर हो गई। मुझे इसके लिए क्षमा कीजिए।

आ०—मुझे क्षमा कीजिए कि आपको अपने कामों से इतनी देर तक रोके रक्खा।

र०—आपको मिलने से बढ़कर और कौन काम होता ?

आ०—(उठता है और कोने से अपनी बदूक उठाता है।)
आज यह यों ही रही बोझ बन कर—

र०—हिन्दु स्त्री की तरह ?

(दोनों हँस पड़ते हैं)

आ०—कनक झूठ कहती थी कि आपको हँसी नहीं आती।

र०—कनक बेचारी बहुत अच्छी लड़की है।

आ०—यह आप जानें। अच्छा नमस्कार।

र०—(रजनी नमस्कार के लिए हाथ उठाती है। रोककर)
सुनिए, आप एक बात याद रक्खेंगे ?

आ०—क्या ?

र०—कनक से मेरा बहुत बहुत प्यार कहें।

आ०—(हँसकर) जरूर। (नमस्कार करके जाता है रजनी कुछ देर तक मौन खड़ी सोचती है। फिर उस दिशा की ओर देखती है जिधर आनंद गया है। एक क्षण बाद पुकार कर) मगल।

म०—जी, सरकार।

(मगल आता है)

र०—आनद बाबू जो अभी यहाँ आये थे, गये ?

म०—जी हाँ, वह जा रहे हैं। (नेपथ्य में संकेत)

र०—देखो, उन्हें जरा बुलाना।

म०—बहुत अच्छा।

(जाता है)

र०—(सोचती हुई) आनद जी—(फिर कोने के टेबुल की ओर जाती है और कुछ कागज ढूंढने लगती है। कुछ कागज लेकर आती ही है कि आनद का प्रवेश।)

र०—इन पंद्रह-बीस दिनों में वह बिल्कुल ही हिलमिल गई थी। वह तो हम लोगों के आने से पहले ही यहाँ थी।

के०—हाँ, बीबी जी।

र०—केसर। कनक के भाई को पढ़ना है न? उन्हें परीक्षा में बैठना है।

के०—परीक्षा क्या बीबी जी?

र०—परीक्षा—एँ एग्जामिनेशन।

के०—क्या बीबी जी?

र०—कुछ नहीं। अब हम लोग यहाँ अकेले रह गये, सबसे अलग।

के०—हाँ, बीबी जी।

र०—तुम्हें डर तो नहीं लगता?

के०—नहीं, बीबी जी।

र०—हाँ, डरने की क्या बात है? हम लोगों को अकेले रहने की आदत डालनी चाहिए। मंगल कहाँ है?

के०—बाहर है, बीबी जी बुलाऊँ?

र०—हाँ, बुलाओ।

(केसर जाती है।)

र०—(फूलों की माला जो टेबुल पर पड़ी है उसे हाथ में लेते हुए) कनक, पिताजी आ—न (वह पूरा नहीं कह पाती कि केसर का मंगल के साथ प्रवेश।)

र०—मंगल।

मं०—जी, सरकार।

र०—मंगल। बाबूजी जाते वक्त कुछ कह गये हैं?

म०—हां, सरकार। कह रहे थे जी कि जैसे ही तबियत बिगड़े, हमें खबर देना और बीबीजी का ध्यान रखना। कोई तकलीफ न होने पाये।

र०—अच्छा।

म०—और जी अपने साथ आपकी तस्वीर भी ले गये हैं। और जाते-जाते उनकी आंखों में आंसू भी थे जी।

र०—(रोकर)। पिताजी मेरा फोटो ले गये हैं। पिता जी (रुककर) मंगल।

म०—जी सरकार।

र०—तुझे डर तो नहीं लगता?

म०—नहीं, सरकार। काहे का डर जी? कौन बात का डर?

र०—हां, यहां तो मैं रहती हूँ। कितना बजा होगा?

म०—दस बजते होंगे जी।

र०—अच्छा, तुम अब जाओ। खबरदारी से सोना।

म०—जी, सरकार।

(जाता है)

र०—केसर, तुम अंदर के कमरे में सोना। खबरदारी से। समझी, मैं यहां सोऊँगी।

के०—दूध और फल नहीं खायेंगी, बीबी जी?

र०—नहीं केसर, मुझे कुछ नहीं चाहिए।

के०—कुछ तो खा लीजिए, बीबी जी।

र०—मैं कह चुकी केसर, मैं कुछ नहीं खाऊँगी।

के०—जी, बीबी जी।

र०—जाओ तुम।

के०—अच्छा, बीबी जी।

(जाती है)

र०—(गहरी सांस लेकर) जीवन का पहला अनुभव। अकेली, सब से अलग। मैंने कहा साधना के लिए एकांत की आवश्यकता है। आनंद बाबू ने कहा—समाज एक बिगड़ा हुआ जानवर है।—अगर मैं इस जानवर को पुचकार कर वश में न कर सकूँगा तो ऐसी गोली मार दूँगा कि वह तकलीफ से कराहने लगे। कितनी शक्ति कितनी आत्मदृढ़ता। मैं समाज में चली जाऊँ ? जाऊँ ? नहीं नहीं, मैं यहीं रहूँगी यहीं रहूँगी। यहीं रहूँगी। (सोचते हुए पिताजी के तैल-चित्र के पास जाकर) पिताजी, मैं यहीं रहूँगी। मैं दुनियाँ को दिखलाना चाहती हूँ कि सुख कहाँ और किस में है। लेकिन आपकी आँखों में आँसू पिताजी। (भावावेग में हट जाती है और अँगीठी के पास जाती है। बैठकर सोचते हुए) आनंद ओह। कैसा जी हो रहा है। (सोचती है। पुस्तक पढ़ने की कोशिश करती है। व्यर्थ। पुकार कर)—केसर।

के०—(भीतर से) जी, बीबी जी।

(आती है।)

के०—आप सोई नहीं बीबी जी ?

र०—नींद नहीं आ रही है, केसर। तू कुछ बातें कर सकती है ?

के०—जी, बीबी जी, पर सो जाइए। रात बहुत हो रही है, नहीं तो तबियत खराब हो जायगी।

र०—नहीं केसर, कुछ तबियत खराब नहीं होती। [रुक कर] रात बहुत अँधेरी है।

(रजनी लैंप की बत्ती कम करने के लिए जाती है परंतु बिना किये ही लौट आती है। एक क्षण बाद फिर आवाज बिल्कुल पास आ जाती है) "दौड़ो दौड़ो, बचाओ।" (भाग दौड़ की आवाज। फिर चीत्कार।) ओह मेरी शशि. मेरी शशि (रजनी फिर चौंक उठती है। घबराहट से पुकारती है) मंगल मंगल।

(मंगल और केसर दोनों का फिर प्रवेश।)

मं०—सरकार कोई रो रहा है। आप सच कहती थी जी।

के०—बीबीजी, किसी ने बेचारे गरीब को मार डाला।

र०—यहीं पास ही है। कौन है ओह अब क्या होगा? मंगल, देखो, कौन है, उसे बचाओ।

(फिर वही आवाज 'मेरी शशि मेरी शशि।)

र०—मंगल, यहीं अपने डेरे के पास है, देखो कौन है। बत्ती ले जाओ (सदूक से रिवाल्वर निकालती है।) मेरे पास रिवाल्वर है। तुम बाहर जाओ।

म०—जी, सरकार।

(जाता है)

र०—केसर।

के०—बीबी जी।

र०—यह क्या हो रहा है। बाबू जी के जाने के बाद ही यह सब क्या हो रहा है?

(रिवाल्वर हाथ में लिये बाहर दरवाजे तक जाती है।)

के०—बीबी जी, आप बाहर न जायें।

र०—(लौट आती है) केसर, यह क्या हो रहा है?

के०—बीबी जी, किसी का बच्चा .

बु०—हाँ, मेरी शशि को ।

र०—कौन उठा ले गया ?

बु०—बदमाश'' छीन ले गये। मेरे घुटने पर लाठी की चोट की और जब मैं गिर पड़ा तो वे लोग उसे उठा ले गये। मेरी शशि ' मेरी शशि ''। [उठकर बैठ जाता है] बचा लो, मेरी शशि को '

र०—कहाँ ले गये हैं वे तुम्हारी शशि को ?

बु०—जाने कहाँ ले गये। बहुत दिनों से वे लोग मेरे घर आते थे। (दर्द से कराहता है)'''ओह। कहते थे, शशि की मेरे साथ शादी कर दो। मैंने एक दिन फटकार दिया .आज वे लोग गिरोह बनाकर आये (कराहते हुए) मेरी शशि को उठा ले गये.. ।

र०—(शून्य में देखती हुई) ओह। स्त्री अपनी रक्षा भी नहीं कर सकती ।.. (बुड्ढे से) वे लोग किस तरफ गये ?

बु०—अँधेरे में कुछ दिखलाई नहीं दिया। जाने कहाँ ले गये। मैं भी जाऊँगा, मैं भी जाऊँगा।

र०—अरे, तुम्हें चोट लगी है। तुम कहाँ जाओगे ?

बु०—जाऊँगा . जाऊँगा, जहाँ मेरी शशि है। (भागने की चेष्टा करता है।)

र०—अरे, लोग तुम्हें मार डालेंगे . ठहरो. ठहरो . ।

बु०—नहीं, नहीं. .मर जाऊँ तो अच्छा है। मेरी शशि . मेरी शशि। मेरी एक ही लड़की शशि ।

र०—(दुहराती हुई) एक ही लड़की शशि. ।

बु०—(रजनी की बात पर ध्यान न देते हुए) शशि, बेटा, मैं अभी आता हूँ। बदमाशों को मार डालूँगा

यह हिन्दू समाज है, जहाँ लड़कियाँ इस तरह उठा ली जाती हैं, आप वे अपनी रक्षा भी नहीं कर सकतीं ... और ... (रिवाल्वर हाथ में सहलाती है।)

के०—नहीं बीबी जी, आप बाहर न जाएँ। रात अँधेरी है

र०—आह! उस बुड्ढे की एक ही लड़की।

के०—बीबी जी, बदमाश लोग हैं।

र०—इन बदमाशों को सजा मिलनी चाहिए, नहीं तो य... बढ़ते जायेंगे।

के०—बीबीजी, जाने कहाँ गये होंगे वे डाकू।

र०—अँधेरी रात ... आज ही अँधेरी रात होनी थी बेचारा बूढ़ा ... बेचारी शशि। उसके भाग्य की ही अँधेरी रात थी।.... (अस्थिरता से कमरे में टहलती है।) उसके भाग्य की अँधेरी रात ..

के०—बीबीजी, सुबह होगी तो देख लीजिएगा।

र०—सुबह क्या पता चलेगा?

के०—न चले बीबी जी ... पर रात अँधेरी है ... आप आराम कीजिए।

र०—क्या आराम करूँ। नींद हराम हो रही है।

के०—नींद तो सचमुच न आयेगी बीबी जी। यहाँ बदमाश बहुत हैं।

र०—मेरे पास भी उनकी दवा है, केसर (रिवाल्वर दिखलाती है।)

के०—बीबीजी, अब आप आराम कीजिए।

र०—(पुकार कर) मगल।

म०— जी, सरकार (आता है।)

र०—मगल, उस बुड्ढे का क्या हुआ ?

म०—सरकार, मेरे रोकने पर भी वह भागता हुआ चला गया और अँधेरे मे गुम हो गया जी।

र०—तब तो वह लडकी मिल चुकी। मालूम होता है, यहाँ ऐसी बातें अक्सर होती है :

म०—होती होंगी सरकार।

र०—अच्छा तुम जाओ, आज सोने का काम नहीं है। मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है।

म०—सरकार, आप सो जायँ। मै जागता रहूँगा। पहरा देता रहूँगा जी।

र०—अच्छा, तुम जाओ।

म०—बहुत अच्छा सरकार।

(जाता है)

र०—आज यह पहली रात बडी खराब रही। (कुर्सी पर बैठ जाती है।) केसर, उस बुड्ढे के एक ही लडकी थी शशि उसे डाकू ले गये।

के०—हाँ, बीबी जी।

र०—ओह, बेचारा बूढा मर जायगा अब तो।

के०—नहीं मरेगा बीबी जी आप सो जायँ। तबियत खराब हो जायगी।

र०—केसर, तुम जाओ।

शे०—नहीं बीबीजी, जब तक आप न सोएँगी तब तक मैं यहीं रहूँगी। मैं नहीं मानने की।

र०—मैं (…) म … हूँ तुम जाओ। जरूरत होगी तो बुला लूँगी।

म०—अच्छा बीबी जी।

(जाती है)

र०—(… हुए) शशि … हो लड़की … वृद्ध पिता

[… सिर … लेता है। बाहर से आवाज आती है—मंगल … मंगल …]

म०—कौन है ?

आ०—मैं हूँ आनंद। यहां तो कोई नहीं आया ?

म०—(…) ओह आनंद जी। (पुकारकर) मंगल !—(…) जी सरकार।

(मंगल आता है)

र०—कौन है ? आनंद जी ?

म०—जी, हाँ, सरकार।

र०—उन्हें जल्दी अंदर ले आओ।

म०—बहुत अच्छा, सरकार।

(जाता है)

र०—(सोचते हुए) आनंद . . जी . . .

म०—(बाहर) चलिए। आप अंदर चलिए, सरकार

[बाहर से टार्च की रोशनी धीरे-धीरे आती है। आनन्द टार्च लिए मंगल के साथ आता है। आनंद सिर्फ कमीज और निकर पहने हुए है। पैर में जूते भी नहीं हैं। हाथ में बंदूक है और कंधे से

होती हुई कारतूसों की पेटी । बाल अस्त-व्यस्त ! कमर में आने पर आनंद टार्च 'ऑफ' कर लेता है ।]

र०—(व्यग्रता से) आनंद जी, यह यहाँ क्या हो रहा है ? मेरी समझ मे कुछ नहीं आता ।

आ०—आप शांत हों । घबरायें नहीं, रजनी देवी जी, कुछ नहीं होगा । यहाँ तो सब ठीक है ?

र०—हाँ, सब ठीक है ।

आ०—आप ?

र०—मै अच्छी हूँ, बिल्कुल अच्छी हूँ ।

आ०—यहाँ तो कोई नही आया ?

र०—आया था ।

आ०—(आश्चर्य से) आया था ? कौन ? कौन आया था ?

र०—एक बुड्ढा । मैंने ही उसे बुलवा लिया था । डाकुओं ने उसे घेर लिया था । उसकी लड़की को वे लोग उठा ले गये । शशि को । वह रो रहा था ! उसके घुटनों पर लाठियों की चोट थी !

आ०—घुटनों पर लाठियों की चोट थी ?

र०—हाँ,उसके कपड़े खून से लाल हो रहे थे ।

आ०—अच्छा, मैंने अँधेरे मे नहीं देखा ।

र०—[आश्चर्य से] आपने अँधेरे मे नहीं देखा ? आपने भी क्या [रुक जाती है ।]

आ०—जैसे ही मै अपने डेरे पर पहुँचा और अपने कपड़े बदल रहा था वैसे ही मैंने चिल्लाहट और भाग-दौड की आवाज़ सुनी । मै उसी तरफ दौडा । मैंने जो टार्च की रोशनी की तो उसमे मैंने देखा कि एक लड़की को दो मजबूत आदमी उठाये लिये जा

रहे हैं। मैंने उसी समय ललकारा और उन्हें डराने के लिए फायर किया। वे लोग उस लड़की को छोड़ कर भागे।

र०—[आवेग से] और शशि बच गई। बच गई।

आ०—हाँ, मैंने लड़की पर रोशनी फेंकी। उसका मुँह उन लोगों ने कपड़े में बन्द रक्खा था। मैं उस कपड़े को खोल ही रहा था कि बेचारा बुड्ढा 'शशि, शशि' कहते हुए वहाँ पहुँच गया—शायद मेरे हाथ की रोशनी देख कर। वह बुड्ढा शायद उस लड़की का बाप था। उसे देखते ही लड़की अपने बाप से लिपट गई। मैं बुड्ढे को धीरज देकर और उसकी लड़की उसे सौंप कर इधर चला आया, यह देखने के लिए कि यहाँ तो कोई गड़बड़ नहीं है।

र०—ओह, आनन्द जी, आप कितने बहादुर हैं। आप कितने अच्छे हैं। अगर आप न होते तो बेचारी शशि को तो वे लोग ले ही गये थे।

आ०—खैर, रजनी देवी, मैंने अपना कर्त्तव्य किया। इसमें बहादुरी की कौनसी बात ?

(अपना बाजू हाथों पर तोलता है)

र०—नहीं आनन्द जी, आप कितने साहसी और.. वीर पुरुष हैं। आनन्द जी, आप बहुत अच्छे हैं।

आ०—ठहरिए, ठहरिए, रजनी देवी आप लोगों को हम जैसे सिपाहियों की जरूरत है। जरूरत है ना।

र०—(सिर हिलाती है भाव से) हाँ, है (फिर जोर से) देखिए ना, स्त्री इतनी कमजोर हो गई है कि वह डाकुओं से अपनी रक्षा भी नहीं कर सकती।

आ०—इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि आप समाज से चलकर स्त्रियों को मजबूत बनायें। आपके लिए यह एकांत नहीं है।

र०—हाँ, मै भी समझ रही हूँ, आनन्द जी।

आ०—और देखिए रजनी देवी जी, इन डाकुओं ने आज उस बुड्ढे के यहाँ छापा मारा, कल ये लोग हमारे-आपके घर भी आ सकते है।

र०—हाँ, डाकुओं को कौन रोक सकता है?

आ०—आप लोगों की शक्ति ही इन्हें रोक सकती है। जब इन बदमाशों को मालूम हो जायगा कि किसी लडकी को उठा ले जाने मे उन्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा तो फिर कभी ऐसा काम करने की उनकी हिम्मत नही पडेगी। वे समझेंगे कि स्त्री शक्ति की देवी है, भैरवी है, दुर्गा है।

र०—आप ठीक कहते है आनद जी। [सोचकर] ओह मै कहना ही भूल गई...बैठिए...बैठिए. ।

आ०—नहीं, धन्यवाद। रात ज्यादा बीत रही है। आप आराम कीजिए...। इन बदमाशों ने आज आप की नींद मे विघ्न डाल दिया। ये डाकू और बदमाश अपनी बदमाशी से बाज नहीं आते। और जब आपको यहाँ रहना है तो आपको बडी खबरदारी से यहाँ रहना चाहिए। खास इन्तजाम के साथ। मै तो कल यहाँ से चला जाऊँगा। आपने अपने अकेले रहने के लिए भयानक स्थान चुना है। खैर, रजनी देवी जी, अब मुझे आज्ञा दीजिए . ।

र०—आप ठहरिए ना मुझे अकेले कुछ . डर मालूम होने लगा है। आप रुकिए ना नहीं नहीं...आप नहीं रुक सकते . मैं आपको कैसे रोक सकती हूँ।

आ०—नही, उसकी कोई बात नहीं है। मै रातभर जागकर आपका पहरा दे सकता हूँ।

र०—आपको कष्ट होगा, आनद जी।

आ०—ओह, आप क्या कह रही हैं। जाने दीजिए! मैं अब चलूँ। मेरे पैर में पत्थर का एक टुकड़ा रास्ते में चुभ गया। [illegible] था। ज़रा ज़रा सी ठेस लगी [illegible]

र०—कहाँ ? कहाँ ? देखूँ ? [आनन्द के समीप पहुँच जाती है। [illegible] पर बैठ जाती है।]

आ०—नहीं, आप रहने दीजिए, ठीक हो जायगा।

र०—नहीं, नहीं देखूँ ? (आनन्द का पैर उठाकर देखती है। पैर की उँगलियों से रक्त निकल रहा है।)

र०—ओह मैंने तो इसे देखा ही नहीं। मैं अभी पट्टी बाँध देती हूँ।

[भाग कर जाती है फिर शीघ्रता से [illegible] में रखा हुआ [illegible] के पानी से भिगो कर पट्टी बाँधती है।]

आ०—ओ, धन्यवाद। धन्यवाद। रजनी देवी जी, धन्यवाद। अँधेरे में क्या मालूम होता कि कहाँ पत्थर-कंकड़ है।

र०—आज आपको बहुत कष्ट उठाना पड़ा।

आ०—नहीं, इस में कष्ट क्या। यह तो प्रत्येक युवक का जीवन होना चाहिए। विपत्ति में लोगों की रक्षा करना, मुसीबतों का सामना करना, जिन्दगी से लड़ना, समाज को ऊपर उठाना।

र०—आपने मुझे रास्ता दिखला दिया, आनन्द जी।

आ०—आप स्वयं एक विदुषी हैं। आपमें ज्ञान का भंडार है। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए, चलूँ। तो फिर मैं बाहर मंगल के साथ पहरा दूँ ? आप अकेली हैं।

र०—नहीं, आप कष्ट न कीजिए। अब कुछ डर नहीं है। आप जाइए।

आ०—ठीक है, और जब तक मेरी बदूक यहीं पास मे है तब तक किसी की हिम्मत नही हो सकती कि वह इस ओर नजर भी कर सके। और आज मेरी बदूक की आवाज सुन कर तो सब बदमाश भाग ही गये होंगे। दिन मे मुझे शिकार नहीं मिला तो ईश्वर ने रात मे मेरी बदूक को जागने का मौका दिया। [हँसकर] अब यह मेरे कधे पर भारी न होकर हल्की हो गई है, होशियार स्त्री की तरह ..

[रजनी कुछ कह नही पाती।]

आ०—अच्छा, अब जाता हूँ। नमस्ते।

[रजनी मौन नमस्ते करती है।]

आ०—देखिए, किसी बात की जरूरत हो तो मगल को मेरे पास फौरन भेज दीजिए। मै अपने डेरे मे जागता रहूँगा।

र०—धन्यवाद। [आनद जाता है। आनद के जाने पर रजनी कुछ देर तक मौन खड़ी रहती है।] चले गये। .. वीर पुरुष आनन्द [एक एक शब्द को रुक-रुक कर कहती है।] आ न द [खिड़की के पास पहुँचती है।] कितने सुन्दर। कितने प्रकाशवान !!

[आकाश की ओर नजर करती है। चद्रमा का उदय होने जा रहा है। तारे आकाश मे छिटके हुए है। क्षितिज मे चद्रमा दिखलाई पड़ता है। रजनी उसकी ओर देखती है।]

र०—[देखती हुई] कितना सुन्दर कितनी प्रकाशवान। [देखती रहती है। फिर पुकारती है] केसर।

के०—आई, बीबीजी।

र०—केसर

के०—आप सोई नही, बीबीजी?

र०—आज सोना आराम से नहीं है। केसर, देख, कितना अच्छा चन्द्रमा निकल रहा है।

के०—हां बीबी जी।

र०—अगर यह शाम से ही निकल आता तो शशि पर यह आफ़त क्यों आती? और अंधेरे में पैरों से चोट क्यों लगती? डर क्यों रहता?

के०—कैसी चोट बीबी जी?

र०—[रुककर] उन बुड्ढे के पैर में चोट लग गई थी ना? तुम्हारे पास खड़ा रहा था। उसके कपड़े लाल हो रहे थे।

के०—हां बीबी जी। उसे तो बहुत चोट लग गई थी।

र०—क्यों केसर, तुझे यहां बुरा तो नहीं लगता?

के०—बीबी जी, आज रात की यह बात देखकर तो डर मालूम होने लगा है। न जाने आपका जी कितना कड़ा है कि यह सब देखकर भी आप यहां रहने की सोचती हैं। आज आनन्द जी न होते तो खैर नहीं थी।

र०—तू सच कहती है, केसर—

के०—और बीबी जी, मुझे तो उस बूढ़े आदमी को देखकर बाबूजी की याद आगई। वे भी आपको ऐसे ही प्यार करते हैं। वे तो चले गये जब उन्होंने आपकी सब तरह से यहां रहने की तबियत देखी। नहीं तो वे कहीं आपको छोड़ सकते थे यहां? अकेले छोड़ सकते थे?

र०—केसर, बाबूजी बहुत अच्छे हैं?

के०—और बीबीजी, आप घर रह कर भी तो पढ़ सकती हैं। यहां कौन ज्यादा पढ़ाई हो जायगी! आनन्द जी रोज तो आयेंगे नहीं।

र०—[चिढ़कर] तू जा ! क्या मैं अकेली नहीं रह सकती ?

के०—आप सो जाइए तो मैं चली जाऊंगी।

र०—अच्छा जा, मैं सोती हूँ। [केसर जाती है।]

र०—[चन्द्रमा की ओर फिर देखती है।] मंगल.

मं०—[बाहर से] जी, सरकार।

र०—तू क्या जाग रहा है ?

मं०—जी, सरकार। आनन्द जी कह गये हैं कि मैं जागता रहूँ। कह रहे थे, कल वह जाने से पहले अपने दो नौकरों को यहाँ और छोड़ जायँगे।

र०—तूने मना नहीं कर दिया ?

मं०—मैं मना कर ही नहीं सका जी और वे चले गये।

र०—चले गये . चले गये । [मंगल से] तुझे बाहर डर तो नहीं लगता ?

मं०—नहीं सरकार डर काहे का जी । लेकिन आज की बात देख कर मुझे डर लगता है जी।

र०—इस में डर की कौन बात ? अच्छा सुन

मं०—बाहर डर की बात तो बहुत है, सरकार

र०—कुछ नहीं। अच्छा आनन्द जी चले गये ?

मं०—जी, सरकार

र०—तो [सोचने लगती है।]

मं०—कहिए, सरकार ?

र०—मंगल, तू उन के डेरे पर जा। देख, चाँद तो निकल आया। अब सब जगह उजेला है।

मं०—अच्छा, सरकार

र०—और और . कनक से कहना कि रजनी ने कहा है कि कि [[illegible]] मैं भी साथ चलूँगी।

ग०—ओहो ओहो साथ चलेंगी ? तब तो क्या बात ! मैं अभी दौड़ के जाता हूँ। [जल्दी से भाग जाता है।]

र०—केसर

के०—आई, बीबीजी। [आती है।]

र०—केसर सामान ठीक करो। हम लोग भी कल सुबह चलेंगे।

के०—[खुशी से] वाह बीबीजी ! वाह बीबीजी !

[पर्दा गिरता है]

गिरती दीवारें

नाटक के पात्र

१. राय साहब — १९वीं [illegible] कुल का स्वामी — [illegible]।

२. विजय मोहन — राय साहब का बड़ा लड़का जो अपने पिता की मर्यादा पर चलने की चेष्टा करता है।

३. प्रद्युम्न कुमार — राय साहब का छोटा लड़का जो नयी परिस्थितियों से [illegible] बना हुआ है।

४. मुंशी — राय साहब का पुराना मुंशी।

५. रामनारायण — राय साहब का नौकर।

६. कान्ता — प्रद्युम्नकुमार की लड़की—राव साहब की पोती

७. मिस साहब — कान्ता की ईसाई अध्यापिका।

रामनारायण की लड़की, अन्य नौकर आदि

परिचय

श्री प० उदयशंकर जी भट्ट का घर जिला बुलन्दशहर में है। २८-३० वर्ष आप लाहौर में ही रहे और सनातनधर्म कालेज में अध्यापन-कार्य करने के साथ साथ हिन्दी साहित्य की सेवा करते रहे। आजकल आप दिल्ली में ऑल इंडिया रेडियो के नाटक-विभाग में काम कर रहे हैं। आप हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और गुजराती के अच्छे विद्वान् हैं। आप उच्च कोटि के दार्शनिक कवि, नाटककार और उपन्यास-लेखक हैं। आपके नाटकों में 'दाहर और सिंधपतन' 'अम्बा' 'सगर-विजय' 'कमला' 'अंतहीन-अंत' 'तीन नाटक' और 'एकांकी नाटक' प्रसिद्ध हैं। भट्टजी के अधिकांश नाटक दुःखांत होते हैं। प्रस्तुत एकांकी इसी ढंग का है। आप इस सिद्धांत में अटल विश्वास रखते हैं कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को ढालने में परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है।

'गिरती दीवारें' की कथा-वस्तु सादा और रोचक है। इसमें यह दिखाया है कि किस तरह रूढ़ियों का बदलना और उनकी जगह नये विचारों और नये रिवाजों का आना अनिवार्य है, परन्तु बड़े-बूढ़े इन परिवर्तनों को देखकर सहन नहीं कर सकते। उनके लिए परम्परा जीवन है और परिवर्तन मृत्यु। नाटक के प्रधान पात्र रूढ़िधारी राव साहब भी १९वीं शताब्दी में रहने की चेष्टा करते हैं। उनके दीवानखाना में जूता लेकर घुसना, स्त्रियों का आना, ऊंचे बोलना मना है। इनके वंशजों में पैदल चलने का रिवाज नहीं—बंद पालकी में जाना पड़ता है। ये लोग कुर्सी पर बैठना अहिंदू से हाथ मिलाना भी बुरा समझते हैं। इनका खान-पान, इनके कपड़े-वस्त्र, एक विशिष्ट ढंग के हैं। परन्तु परिस्थितियां बदल गयी हैं और ये प्रतिबन्ध एक एक करके टूटने लगते हैं। राव साहब अपनी आंखों के सामने वंश की मर्यादा का अंग भंग होते देखते हैं। उनकी परम्परा के भवन की दीवारें नये वातावरण में नहीं ठहर सकती। वे गिरती हैं और अपने साथ राव साहब की जान भी ले लेती है।

[एक पुराने रईस का कमरा—देसी ढंग से सजा हुआ। जमीन पर एक तरफ मोटा गद्दा बिछा है जो आधे से अधिक कमरे को घेरे हुए है। दरवाजे के पास किनारे २ बेत की बनी हुई कुर्सियां रखी हुई है। गद्दे पर गाव-तकियों की कतार ठीक ढंग से रखी है। एक तरफ कोने में एक मेज पर तांबे का लोटा रखा है।

दीवार पर विभिन्न प्रकार के चित्र लगे है। एक ओर उस वंश के पूर्वजों के चित्र लगे है। प्राय. प्रत्येक चित्र में उस हिस्से के पूर्वज चोगा पहिने हुए है। कान को ढके हुए एक विशेष नोक वाला साफा है। ऐसी नोक जनसाधारण अपनी पगड़ी में नहीं रखते। यही इस परिवार की विशेषता है—चोगा और पगड़ी।

कमरे के वातावरण को देखकर ज्ञात होता है कि पुरानी रूढ़ियों को पालना इस कुल का परम लक्ष्य है। कोई बात जो अब तक नहीं हुई इस घर में नहीं हो सकती। जिस ढंग से बात करने का नियम है उसी ढंग से बात करना सिखाया जाता है। प्रत्येक लड़के को यही सीखना होता है कि इस कुल की परम्परा क्या है। परम्परा के विरुद्ध कुछ नहीं होता।

कुलपति अस्सी-पचासी वर्ष के एक व्यक्ति हैं। उनका शरीर शिथिल है। अपने पूर्वजों की पोशाक में कालीन पर ही बैठते है। उनकी आज्ञा है कि कोई भी व्यक्ति उस कमरे में जोर से न बोले, बिल्कुल धीरे अदब-कायदे से आए। जूते दरवाजे के पास उतारे। यदि जूते न उतारने हों तो दीवार के किनारे २ लगी हुई कुर्सियों पर बैठे।

यही उस कुल तथा कमरे की रक्षा का उपाय है। उस कमरे में स्त्रियां नहीं आ सकती। छोटी-छोटी लड़कियां भी नहीं। उनके लिए उस कमरे के पीछे बड़े कमरे में उठने-बैठने का स्थान निश्चित है।

शुरू में कमरे के मध्य पर पर्दा पड़ा रहता है जिससे गृहपति का पुराना कुर्सी [illegible] रहता है। इसके सामने [illegible] डेस्क पर [illegible] है। यह दोनों भाग [illegible] कमरे में दिखाई देता है। केवल मान-रक्षा के लिए यह पर्दा डाल रखा गया है। आवश्यकता होने पर पर्दा हटा दिया जाता है। पर ऐसा बहुत कम होता है, प्रायः इस कमरे में घर के आदमी भी नहीं रहते। [illegible] और [illegible] कोई भी व्यक्ति पैदल नहीं [illegible] सकता था। [illegible] पर [illegible] हुआ।

कहा जाता है इनके पूर्वज किसी राजा के यहाँ एक बड़े पद पर नियुक्त थे। महाराजा इनको बहुत मानते थे। यहाँ तक कि महलों और अपने घर के सिवा वे कभी पैदल नहीं चले। सदा बन्दगाड़ी में चलते। [illegible] बहुत से व्यक्तियों ने उनको नहीं देखा था।

तब से कुल का बड़ा लड़का जो घर का मालिक होता था, इस नियम का पालन करता था। फिर भी पैदल चलना, बिना चोगे पगड़ी के दीवानखाने में आना असम्भव समझा जाता था। गृह का एक लड़का था जो इसी नियम का पालन करता था। गृहस्वामी प्रायः कभी-कभी उस कमरे में आता था।

कमरे में उत्तर की तरफ क्रमशः तीन आसन (कालीन) गाव-तकियों के साथ बिछे हैं। उन पर क्रमशः वंश के पूर्वज बैठा करते थे। प्रत्येक आसन पर उन पूर्वजों के चोगे, पगड़ी और तलवारें रखी हैं। तलवारें पर फूल पड़े हैं। चौथा आसन ठीक इसी प्रकार का गृहपति का है। उसके साथ ही लड़के का आसन है। गृहपति के आसन पर तीन गावतकिए और लड़के के आसन पर एक नक्काशीदार डेस्क है।

उस कमरे में घुसने का कायदा यह है कि सिवा गृहपति के जो भी व्यक्ति उस कमरे में आये उसे तीन बार झुककर प्रणाम करना पड़ता है।

गृहपति के आसन के पास एक गोल कटोरा और एक छोटा सा डंडा रखा है। स्वामी जब किसी को बुलाना चाहते हैं तो कटोरे को डंडे से बजाते हैं।

इस समय कमरा खाली है। एक नौकर है जो कमरे की धूल झाड़ रहा है। वह प्रत्येक आसन के पास जाकर तीन बार झुककर प्रणाम करता है, फिर सब चीजों को साफ करता है। साफ करते हुए कभी-कभी सीटी बजाता है, बोलता नहीं। एकाएक नौकर की लड़की रोती हुई दौड़ी आती है।

लड़की—(जोर से) काका, काका ओह काका !

नौकर—(डर से मुँह पर उँगली रखकर) चुप !

लड़की—काका, भैया चौतरे से गिर पड़ा, काका। उसके खून निकल आया। अम्मा बुला रही है। चलो जल्दी।

नौकर—(बहुत धीरे से) तू जा, मैं आया। राँड कहीं की। चिल्ला रही है। जा . !

लड़की—चलो न काका, चलो।

नौकर—जा । (उसी स्वर में। पास जाकर कमरे से बाहर कर देता है। लड़की रोती २ चली जाती है)

(सहसा पीछे से वृद्ध राव साहब का प्रवेश)

राव साहब—(धीरे से) रामनारायण। यह क्या ? अरे तुमने यह क्या किया ? तुम्हें मालूम है आजतक इस कमरे में कोई जोर से नहीं बोला। बड़ा गजब हो गया रे। (स्वयं कांपने सा लगता है) देखते हो हमारे पूर्वज इसमें रहते हैं। (इतना कहने के साथ प्रत्येक आसन को झुक झुक कर सलाम करते हैं। रामनारायण एकदम स्वामी का आना जान कर कांपने लगता है)

राव०—यह तो बुरा हुआ। बहुत बुरा हुआ। (बैठ कर डंडे से कटोरा बजाते हैं) ठहरो। तुम इस कमरे से नहीं जा सकते। ठहरो।

ठहरो। (पर्दों की आवाज से वह मुर्झा जाता है। आन पर वह भी तीन चार पुर से आगम रखता है) मुंशी, मुनो मुंशी, रामनारायण ने मेरे वंश की प्रथा को तोड़ा है। सुना मुंशी, इसने परम्परा से चली आई प्रथा को तोड़ डाला है। इस कमरे में मेरे पूर्वज निवास करते हैं। (इतना कह प्रत्येक आसन की ओर हाथ उठाता है मानो उन्हें प्रणाम कर रहा हो) मैंने कोई भी व्यक्ति इस कमरे में जोर से बोलते नहीं देखा—अपने समय में ही नहीं पिताजी के समय में भी।

मुंशी—मैं स्वयं पचास वर्ष से रह रहा हूँ, श्रीमान। मैंने आजतक ऐसा अनर्थ नहीं देखा। यह तो बहुत बुरी बात है।

राय०—न जाने क्या होने वाला है?

मुंशी—मुझे रात से ही भयङ्कर स्वप्न आ रहे हैं प्रात काल यह हो गया।

नौकर—महाराज, क्षमा चाहता हूँ।

राय०—कभी ऐसा नहीं हुआ। हम लोग सदा से मर्यादा का पालन करते आये हैं। इसको मेरे सामने से हटा दो। मुंशी ओ वह देखो, ओह वह देखो। पिता, पितामह, प्रपितामह के चोगे क्रोध से हिल रहे हैं। देखते हो ना? अरे (ऊपर देख कर सब पूर्वजों के चित्र मेरी ओर क्रोध से देख रहे हैं। न जाने क्या होने वाला है?

[मुंशी नौकर को हाथ से पकड़ कर बाहर निकाल देता है।]

मुंशी—अनर्थ यहीं तक नहीं हुआ। रामनारायण की लड़की आ गई।

राय०—(डर के मारे आंखें बन्द कर लेता है। कांपता हुआ लड़की आ गई? क्या वह लड़की थी मुंशी? (बैठ कर) अब क्या

होगा ? गजब हो गया। अनर्थ हो गया । (चित्रों की ओर अपकती हुई आंखों से देखता हुआ) मर्यादा भङ्ग हो गई। (डर के मारे दूसरी बार कटोरा बजा देता है) हैं, यह क्या हुआ । यह दूसरी बार कटोरा क्यों बज उठा ? ऐसा कभी नहीं हुआ। यह अनहोनी बात है, मु शी ।

मु शी—जी । अनहोनी बात है । न जाने क्या होने वाला है ? ऐसा तो इस घर मे कभी नही हुआ।

राव—हाँ, रामनारायण के दड की व्यवस्था करनी होगी। भयकर बातें हो रही है इस घर मे। देखो, विजयमोहन कहाँ हैं ? रात में एक भयकर स्वप्न देखा था, मु शी । (एक दम गाव-तकिए का सहारा लेकर आँखें बन्द कर लेता है। चेहरा पीला पड जाता है। मुंशी पंखा करने लगता है। रामनारायण कटोरे की आवाज सुनकर लौट आता है) अरे, यह फिर आ गया ? फिर आ गया यह । इसने मेरे सारे स्वप्न भग कर दिए। जा दुष्ट, तूने मेरे जीवन का अंतिम सुख छीन लिया। दूर हो। (राव साहब के लडके का अस्तव्यस्त अवस्था में प्रवेश) अरे। यह क्या ? चोगा फट कैसे गया, विजय ? गजब हो गया। न जाने क्या होने वाला है ?

विजयमोहन—[खेद के साथ तीन बार पूर्वजो की गद्दी को प्रणाम करके] न जाने क्या होने वाला है, पिताजी। आज मुझे जीवन में पहली बार पैदल चलना पडा। सब लोग देख रहे थे ।

मु शी—वश की प्रतिष्ठा सब नष्ट हो गई, महाराज । चोगा फट गया।

राव०—न जाने क्या होने वाला है । (तकिए पर से सिर ढुलक जाता है। सब लोग सम्हालने दौडते हैं)

विजय—न जाने क्या होने वाला है, मुंशी। रास्ते में आते समय मेरी गाड़ी एक दूसरी गाड़ी से टकरा गई। लोगों ने मुझे देख लिया। और मेरा चोगा फट गया। बहुत ही अशुभ चिन्ह है, मुंशी।

मुंशी—हां बाबू। न जाने क्या होने वाला है। आज सवेरे रामनारायण की लड़की कमरे में घुस आई और चिल्लाने लगी।

विजय०—हैं (आश्चर्य से) हैं। ऐसा क्यों?

मुंशी—हां बाबू! लक्षण अच्छे नहीं हैं। इस घर ने सदा मर्यादा का पालन किया है। आजतक किसी ने भी इन पूर्वजों के साथ जोर से बातें नहीं कीं।

विजय—मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ, इस घर की प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते नजर आ रहे हैं।

राय०—(चैतन्य होकर) क्या कहा? प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते नजर आ रहे हैं। मेरे रहते ही क्या, विजयमोहन। नहीं, ऐसा न कहो। (चित्रों को प्रणाम करते हुए) क्रोध न कीजिए। मैंने भरसक इस घर की मर्यादा की रक्षा की है। तुम्हारी आज्ञा का पालन किया है। देखो विजय रामनारायण बिना खाये-पिये मेरे इन पूर्वजों के सामने हाथ जोड़े मौन खड़ा रहेगा। समझे। यही हमारे वंश का दंड है उनके लिए, जो हमारे नियम भंग करते हैं। (चुप रहता है) मैंने सुना है, देखा नहीं, कि दादा जी के समय में कोई सम्बन्धी इस कमरे में घुस कर जोर से चिल्लाया तो उन्होंने उसे सात दिन तक निराहार रहकर खड़े रहने का आदेश दिया था। जब वह मूर्च्छित हो गया तो उसे खाट से बाँधकर खाट खड़ी कर दी गई थी। वंश-मर्यादा का तोड़ना साधारण बात नहीं, विजय!

विजय—यथार्थ है, पिताजी।

मुंशी—मैं पचास वर्ष से इस घर का अन्न खा रहा हूँ। मैंने कभी नहीं देखा किसी ने वंश-मर्यादा में घट्टा लगाया हो, वंश की मर्यादा में धक्का लगाकर उसे पीछे धकेला हो। आखिर यह महाराज के कोषाध्यक्ष का कुल है। मुझे याद है पुराने स्वामी कभी भी बाहर नहीं निकले।

एक बार गांव के बाहर लोगों ने उनके दर्शनों की इच्छा प्रकट की, तब वे पालकी में बैठकर एक बार गांव गए। केवल एक बार। वहाँ भी गांव के लोगों ने उनके दर्शन पर्दे से किए। उस समय गांव के लोगों को ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे भगवान उतर आए हों। बाहर वे कभी न निकले। अंग्रेजों के दरबार में भी वे जाते रहे। सरकार बहादुर ने उनके मिलने का खास प्रबन्ध किया था। उनसे कह दिया था कि आपके आने की कोई आवश्यकता नहीं है। सरकार आप पर बहुत खुश है।

राव०—तुम ठीक कहते हो, मुंशी। यही बात है। तब से मैं भी इसी तरह बाहर आता-जाता रहा हूँ। तीस वर्ष पूर्व जब मैं तीर्थयात्रा को गया तब भी पालकी ही में यात्रा की। एक बार चलते चलते हमारे पालकीवाले कीचड़ में फँस गए। उस समय गांववालों ने ही मेरी सहायता की, मैं पालकी से नहीं उतरा। मेरा विश्वास है जब तक हम अपनी वंश-मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक हमारा नाश नहीं होगा। मेरे प्रपितामह ने एक बार स्पष्ट कहा था, हमारा वंश बहुत ऊँचा है— हम लोग साधारण मनुष्यों-से नहीं हैं। हमारे ऊपर विशेष कृपा करके ईश्वर ने हमारे वंश का निर्माण किया है। यही कारण है इस वंश को आज तक कभी पतन का दुख नहीं देखना पड़ा।

विजय—यथार्थ है। मेरी ही समस्या को लो। मैंने आज तक उन्हीं नियमों का पालन किया है। आज न जाने कहां से यह सब हो गया।

राय०—मुझे डर है कि प्रद्युम्नकुमार हमारे इस वंश की रक्षा कर सकेगा या नहीं? यह अंग्रेजी पढ़ कर तहसीलदार हो गया है। मेरे मना करने पर भी यह राजकुमार कालेज में पढ़ने गया था। हमारे घर से कोई भी घर से बाहर पढ़ने नहीं गया। सदा घर पर ही अध्यापक रख कर पढ़ाया जाता रहा है। केवल इसीलिये कि मर्यादा भंग न हो। बाहर का वातावरण तो विष से भरा होता है ना, मुंशी।

मुंशी—जी।

राय—न जाने कोई क्या कह दे? क्या परिस्थिति हो? हम लोग साधारण मनुष्य नहीं है। इसलिए अखबार नहीं मँगाते। मैंने कोई समाचार पत्र नहीं पढ़ा।

विजय—मैंने भूल से एक बार समाचार-पत्र पढ़ा था। तभी मैंने देखा कि समाचार-पत्रों मे बहुत सी बातें झूठी होती है। उदाहरण के लिए यह कि अमुक देश मे अकाल पड गया, हजारों लोग भूखों मर गए। भला यह कोई बात है। उस जगह का अनाज कहाँ गया? 'देश मे हजारों की संख्या मे बाल-विधवाएं हैं—बाल-विधवाए।' मैंने नहीं सुना हमारे नगर में दो-चार भी बाल-विधवाएं हों। इन समाचारों से लाभ क्या है, मैं पूछता हूँ। एक बार किसी ने लिखा कि आदमी हवाई जहाज से उडने लगा है। भला यह भी विश्वास करने की बात है? कभी ऐसा भी हो सकता है कि आदमी उडने लगे। आखिर कौनसी चीज है जिस पर बैठकर आदमी उडेगा।

मुशी—गप्प है—बिलकुल गप्प है। न जाने क्यों सरकार ने इस पर रोक-थाम न लगाई।

राव०—भाई कलियुग है। कलियुग मे जो न सुनने मे आए सो थोडा है। शिव। शिव। न जाने क्या होने वाला है? सुना है रेल नाम की कोई चीज बनी है जो जल्दी ही एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा देती है? मै कहता हूँ कि हमे इधर-उधर जाने की आवश्यकता क्या है? हमारे घर मे क्या नहीं है?

विजय—(पिता से) एक बार एक अग्रेज हमारे घर मे आ गया जिन दिनों आप तीर्थयात्रा को गये थे। तो मै बडी दुविधा मे पड़ गया। क्या करू? कहाँ बिठाऊँ? मैने बाहर दालान मे तख्त बिछवाए। गद्दी, कालीन, तकिये ठीक तरह जमा दिये वहाँ मैं उससे मिला। उसके बाद सारा घर गोबर से पुतवाया, सब कपड़े धुलवाए। गगाजल छिडकवाया। तब कहीं जाकर घर पवित्र हुआ। घर की मर्यादा है।

मुशी—मैं भी तो था।

राव०—मुझे गर्व है—तुम जैसे पुत्र मेरे घर हुए। फिर भी इस कमरे मे तो ऐसे अनजाने को आने का अधिकार ही नहीं है। अच्छा हुआ उसने हमारे पूर्वजों के चित्र देखने का आग्रह नही किया, नहीं तो बड़ी कठिनाई आती।

विजय—उसने कहा था कि हमे अपना घर दिखाओ। मैने कहा—पिताजी नहीं है, मकान की चाबी उनके ही पास है। वे तीर्थयात्रा को गए हैं। मै स्वय उससे दूर एक ओर तख्त पर बैठा था। जब उस ने मिलाने को हाथ उठाया तो मैने दूर से ही हाथ जोड दिए, उसके पास नहीं गया। फिर भी मैंने सब कपडों के

साथ स्नान किया। क्या करता? अंग्रेज नाराज हो जाता तो न जाने क्या होता?

राव०—अब न जाने क्या होने वाला है? हम लोगों को अपनी मर्यादा नहीं छोड़नी चाहिए, विजय!

[एक नौकर का प्रवेश]

नौकर—(तीन बार झुक कर प्रणाम करता) श्रीमान्, छोटे राजा पधार रहे हैं।

राव०—प्रद्युम्न! प्रद्युम्न आया है क्या? अच्छा!

विजय—आज ठीक तीन वर्ष बाद लौट रहा है। न जाने कैसा होगा?

मुंशी—अब अंग्रेजों से बात करने में हमें सुविधा होगी।

[प्रद्युम्नकुमार का प्रवेश, चालीस वर्ष की वयस, कोट-पतलून पहने, सिर पर टोप। उसे देखते ही जैसे लोग उसे पहिचानते नहीं हैं। आश्चर्य में अभिभूत केवल पिता को ही प्रणाम करता है और किसी को नहीं]

प्रद्युम्नकुमार—(केवल हाथ जोड़ता हुआ जूते उतार कर पिता के पास आ जाता है। चोगा और पगड़ी उसके सिर पर नहीं है। यह उन लोगों के लिए आश्चर्य की बात है) मेरा तबादला दूसरी जगह हो रहा था, मैंने सोचा, चलूँ, आपसे मिल लूँ। कहिए आपका स्वास्थ्य कैसा है? और भैया तुम? तुम्हारे भी बाल सफेद हो रहे हैं। आजकल बड़ा काम रहता है। या तो भाग-दौड़ या फिर दफ्तर का ढेरों काम। सिर उठाने को भी समय नहीं मिलता। आप बड़ी हैरानी से मेरी ओर देख रहे हैं? ओ समझा, शायद इसलिए कि मैंने टोप नहीं उतारा? ठीक कायदा यह है कि जब अपने से बड़े के सामने जायँ तो टोप उतार लेना चाहिए। बात यह है कि जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ मुझ से बड़ा कोई नहीं है।

इसलिए जब कोई बड़ा अफसर आता है तो मुझे टोप उतार देना होता है। (टोप उतार कर) क्यों, आप कोई बोल नही रहे हैं ? क्या बात है ? समझा, शायद इसलिए कि मैंने टोप पहन लिया है। अंग्रेज बन गया हूँ। क्या किया जाय पिता जी, अंग्रेजों के साथ रहकर ऐसा करना पडता है। न करूँ तो गाव वालों पर रौब न जमा पाऊँ। रही चोगे की बात, वह तो वहाँ पहला तमाशा ही होता। मै मजबूर हूँ।

[राव साहब सिर हिलाते है जैसे अभी ढुलक कर गिर पड़ेंगे और मुशी आँखे फाड़ कर देखते हैं]

विजय—तुमने वश की मर्यादा नष्ट कर दी प्रद्युम्न। तुम पिता के सामने इस वेश मे आए ? आने से पहले तुम्हे दो बार सोच लेना चाहिए था। अच्छा होता यदि तुम न आते।

प्रद्युम्न—(आश्चर्य से) सुनो भैया, मै क्यों न आता ? यह मेरा घर है—मेरी जायदाद है। मैं क्यों न आता ? मै रडियों की सी पेशवाज पहन कर कचहरी नही कर सकता। सिर पर व्यर्थ का गट्ठड़ नहीं रख सकता। समय बदल गया है हमको भी बदलना चाहिए। क्या रखा है इन पुरानी बातों मे।

विजय—तो तुम्हारे विचार मे पुरानी बातें बुरी होती है ? तुम्हारा शरीर भी तो चालीस साल पुराना हो गया है उसे क्यों नही छोड देते ?

(पिता और मुशी इस तर्क पर प्रसन्न होते हैं)

प्रद्युम्न—यह भी विचित्र तर्क है। क्या शरीर छोडना, ना छोडना मेरे हाथ मे है ? उस ईश्वर ने शरीर दिया है जब चाहेगा तब ले लेगा। जब उसे लेना होता है तो वह यह थोडे ही देखता है कि शरीर नया है या पुराना।

(दोनों उधर ही जाते हैं)

विजय—तब यही कैसे कह सकते हो कि पुरानी बातें बुरी हैं। हम भी तो, पिता जी भी तो मनुष्य हैं, हमें यह बातें बुरी नहीं दिखाई देतीं।

प्रद्युम्न—आप लोग घर में रहते हैं। मुझे बाहर आना-जाना होता है, लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है। मुझे समय के साथ चलना होगा। मैं पैदल भी चलता हूँ गाड़ी में भी चलता हूँ।

राव०—(आवेश में) पैदल भी। न जाने क्या होने वाला है इस घर का ? (गद्दी पर मुह लटका कर गिर पड़ता है)

विजय—(एकदम दौड़कर पिता को सम्हालता है, मुट्ठी पकड़ता है) बड़ा अनर्थ हो रहा है। देखो, देखो, प्रद्युम्न, पूर्वजों के चित्र क्रोध से हमको देख रहे हैं। उनके कपड़े क्रोध से हिल रहे हैं। कमरे का वातावरण गुमसुम हो गया है। हमारी वाणी सूखी जा रही है। क्या तुम कुछ भी नहीं देखते ? अच्छा, तुम इस घर से चले जाओ।

(राव साहब होश में आते हैं। प्रद्युम्न उनकी तरफ देखता है—देखता ही रहता है। फिर एक बार चित्रों की ओर देखता है। इतने में एक लड़की—प्रद्युम्नकुमार की—जो लगभग १० वर्ष की है, कमरे में दौड़ती हुई आ जाती है। कन्या एक फ्रोक पहिने है अंग्रेजी ढंग के बाल कटे हैं। टांगें खाली जूते पहिने चली आती है। उसके साथ उसकी ईसाई अध्यापिका भी घुसती दोनों जूते पहिने भीतर आ जाती हैं और लड़की उसे सब चित्र आदि दिखाती है)

कान्ता—देखती हो मिस साहब, ये मेरे बाबा हैं। बाबा, ओ बाबा।

कान्ता—(बाबा के पास दौड़ती हुई इशारा कर) ये हम लोगों के बाप-दादों की तसवीरें हैं। अरे बाबू जी, आप भी बैठे हैं। गुमसुम, चुपचाप!

मिस—(आश्चर्य से देखकर) वेरी. स्ट्रेञ्ज ड्रेस! हाउ आक्वर्ड इट लुक्स।

[सब लोग चित्रलिखे से रह जाते हैं मानो उन्हें काठ मार गया हो। जैसे ही वे कमरे में आने लगीं थी नौकर उन्हें रोकने आया था। किन्तु साहस न होने के कारण बाहर दरवाजे पर खड़ा हो गया। वहाँ खड़ा रहता है]

विजय—कान्ता, बाहर जाओ। जाओ बाहर।

मुंशी—मिस साहब, बाहर जाइये।

राव०—न जाने क्या होने वाला है? आज स्वप्न सत्य हो रहा है। मैं अब ... और ... (सिर लुढ़क जाता है) और न .. हीं . (डर से दोनों स्त्रियाँ बाहर चली जाती हैं। सब राव साहब को सम्हालते हैं। प्रद्युम्न भी पिता के पास आता है) तुम मुझे मत छुओ, प्रद्युम्न। हाथ मत लगाओ। मुझे इसी कमरे में मरना होगा। बाहर मत ले जाना। मेरे पिता. पितामह, प्रपितामह इसी कमरे में मरे थे—इन्हीं आसनों पर। यही वंश की मर्यादा है। [हाथ चित्रों को प्रणाम करने के लिए उठते हैं] नहीं अब ... और नहीं ... सब समाप्त हो चुका। वं ... श ... की ... म ... र्या . दा

[मर जाता है। सब चित्राभिभूत से खड़े रहते हैं।]

देश-भक्त सम्राट् पुरु

नाटक के पात्र

पुरु	मद्र-देश के सम्राट, नाटक के नायक।
आम्भी	तक्षशिला का राजा
सिकंदर	यूनान के सम्राट जिन्होंने सन् ३२६ ई० पूर्व भारतवर्ष पर आक्रमण किया था।
सेल्यूकस	सिकंदर के मुख्य सेनापति।
ऊर्मिला	राजा आम्भी की इकलौती पुत्री।

मद्र-देश के मन्त्री और सेनापति, सिकंदर के शिविराध्यक्ष।

परिचय

इस नाटक के लेखक प्रस्तुत सग्रह के सम्पादक डा० हरदेव वाहरी हैं। आप हिन्दी भाषा और साहित्य के विशेषज्ञ है। आप बहुत पुराने लेखक हैं। सन १९२८ से आप कहानिया लिखते आये हैं, परन्तु कुछ वर्षों से गम्भीर विषयों पर चिंतन-मनन कर रहे हैं। हमारे आग्रह से आपने यह एकाकी नाटक लिखा है जिसकी श्री हरिकृष्ण प्रेमी तथा उदयशकर जी भट्ट ने बडी प्रशसा की है।

डा० वाहरी इतिहास मे विशेष रुचि रखते है, इस लिए आपका दृष्टिकोण ऐतिहासिक रहता है। प्रस्तुत नाटक का कथानक पजाब के प्राचीन इतिहास से लिया गया है। जेहलम और चनाब नदियों के बीच का प्रदेश मद्र-देश कहलाता था। इसके अतिरिक्त अभिसार, तक्षशिला (टेक्सला), आदि छ और राज्य पजाब में थे जिनपर मद्र-देश के महाराज चद्र का आधिपत्य था। तक्षशिला का राजा आम्भी सदा इस चेष्टा म रहता था कि चद्र की जगह स्वय अधिपति बने। एक बार चंद्र और उसका बेटा पुरु तक्षशिला में अतिथि बन कर गए, आम्भी ने चद्र को धोके मे बन्दी बना लिया और पुरु को किसी अपराध मे पकड्वा कर मृत्यु दण्ड दे दिया, परन्तु आम्भी की इकलौती बेटी उर्मिला ने जो पुरु के पौरुष पर मुग्ध थी पुरु को छुड्वा दिया। चद्र की मृत्यु के बाद पुरु मद्र-देश का सम्राट् बना। इन्हीं दिनों यूनान का बादशाह सिकदर ईरान और गाधार से होता हुआ भारत पर चढ आया। आम्भी ने उसका स्वागत किया। वह सिकदर की सहायता से पुरु को परास्त करना और अपनी ईर्ष्या की आग ठडी करना चाहता था। पहले आम्भी ने ही मद्र-देश पर आक्रमण किया परन्तु हार गया और पकडा गया। पुरु ने उसे इस शर्त पर छोड दिया कि वह सिकदर को भारत से निकालने मे सहायता करेगा। आम्भी छूटते ही फिर सिकदर से जा मिला और उसे रातों-रात मद्र-सेना पर आक्रमण करने की सलाह

पहला दृश्य

[स्थान—झेलम नदी के तट पर महाराज पुरु का शिविर। समय—सायंकाल। शिविर में कोई विलास-सामग्री नहीं है। सजावट भी आडम्बर-रहित है। हाँ, शिविर में शस्त्रास्त्रों का बाहुल्य अवश्य है। नेपथ्य में 'मद्र-महाराज पुरु की जय' का घोष निरंतर सुनाई पड़ रहा है। महाराज पुरु, मद्र-सेनापति और मद्र-मन्त्री का प्रवेश]

पुरु—सेनापति, सैनिकों से कहो, इस साधारण विजय पर ऐसे जय-घोष की आवश्यकता नहीं है।

सेनापति—तक्षशिला-नरेश पर विजय पाना और उन्हें बंदी बनाना महाराज के लिए साधारण बात हो सकती है, किंतु मद्र-सैनिकों के लिए तो यह उनकी चिरकालीन आकांक्षा की पूर्ति है। वैसे तो पहले भी तक्षशिला-नरेश को हमारी सेनाओं ने आपके स्वर्गीय पिता वीर-प्रवर सम्राट् चंद्र की अध्यक्षता में तीन बार पराजित किया है, किंतु...

पुरु—किंतु क्या ?

सेनापति—किंतु, इस बार आम्भी बंदी बना लिया गया है।

मंत्री—हाँ, और इस बार उस दुष्ट और नीच को उसकी धृष्टता का पूरा-पूरा पुरस्कार दिया जाना चाहिए।

पुरु—एक महाराज के प्रति ऐसे शब्द कहना आर्य योद्धाओं के लिए उचित नहीं है, मंत्री।

मन्त्री—क्षमा कीजिए महाराज, मद्र-देश के प्रत्येक हृदय में इस व्यक्ति के प्रति घृणा है। इसने विद्वेष-वश बार-बार पराजित

होने पर भी आक्रमण करना नहीं छोड़ा। हमारे देशवासियों की सत्य-शक्ति को [illegible] में [illegible] रखा है। उसके लिए 'नीच' और 'दुष्ट' शब्द अपर्याप्त हैं।

पुरु—फिर भी उदारता वीरों का अलंकार है। (सेनापति से) कहाँ है महाराज आम्भी?

सेनापति—दूसरे शिविर में—आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पुरु—उन्हें यहाँ ले आओ। हम उनके विषय में निर्णय करेंगे।

(सेनापति का प्रस्थान)

मंत्री—महाराज [illegible]।

पुरु—(मंत्री से) मंत्री! तुम्हें मेरी बुद्धि और विवेक पर विश्वास नहीं है?

मंत्री—है क्यों नहीं महाराज, किन्तु उदारता आपका वंशानुगत गुण है, इसीलिए भय होता है कि इस काले नाग को आप फिर न खुला छोड़ दें।

पुरु—भारत के विभिन्न राजवंशों के वैर को पीढ़ियों तक बढ़ाए जाना देश के हित में घातक है।

मंत्री—यह विवेक सभी में जाग्रत हो तभी तो इसका शुभ परिणाम निकले। साँप पर चोट की है तो उसे जीवित छोड़ना सदा के लिए मृत्यु की विभीषिका को आमंत्रित करना है।

(सेनापति के साथ बंदी रूप में आम्भी का प्रवेश)

पुरु—(सेनापति से) इनके बंधन खोल दो।

(सेनापति आम्भी के बंधन खोल देता है)

पुरु—आम्भी, हम आज तुम्हारा अंतिम निर्णय करेंगे, तुम आर्य हो, क्षत्रिय हो—तुम्हें तुम्हारे उपयुक्त दंड मिलना चाहिए। (सेनापति से) अपनी तलवार इन्हें दो।

(सेनापति अपनी तलवार आम्भी के आगे रख देता है)

पुरु—उठाओ आम्भी, तलवार उठाओ। मैं तुम्हें एक अवसर और देना चाहता हूँ—मुझ से द्वन्द्वयुद्ध करो।

मंत्री—महाराज !

पुरु—मंत्री, मेरी तलवार पर आपको विश्वास रखना चाहिए। (आम्भी से) उठाओ आम्भी, तलवार उठाओ—और सदा के लिए तक्षशिला और मद्र के संघर्ष को समाप्त कर दो।

आम्भी—(तलवार उठाकर) तलवार उठाने की शक्ति मुझ में है महाराज पुरु, किंतु (तलवार पुरु के चरणों में रखकर) आज आपकी उदारता ने मुझे मोह लिया है—मुझे क्षमा कीजिए।

पुरु—क्षमा ! तुम्हें आम्भी ! मेरे पूज्य पिता का वृद्धावस्था में अपमान करने वाले व्यक्ति को क्षमा ! वह अतिथि बन कर तुम्हारे यहाँ गए थे—तुमने उन्हें बंदी बना कर आर्य संस्कृति को कलङ्कित किया था, आम्भी !

मंत्री—तक्षशिला-नरेश ! एक बार स्वर्गीय महाराज ने भी आप पर दया की थी। कटाक्षरान के युद्ध में आप को हराकर, बंदी बनाकर भी जीवित छोड़ दिया था। उसका बदला आपने उन्हें अतिथिरूप में आमन्त्रित कर बंदी बनाकर लिया था। क्या अपराध किया था उन्होंने ?

आम्भी—मैं अपने अपराधों के लिए लज्जित हूँ, महाराज ! बदले की भावना ने मुझे आज तक अंधा बनाये रखा था।

सेनापति—(व्यङ्ग्यपूर्वक) एक दिन हमारे वर्तमान महाराज को भी तो मृत्यु-दण्ड सुनाया था आपने। वह किस अपराध में, तक्षशिला-नरेश ?

पुरु—(हँसकर) अपराध तो मैंने किया था, सेनापति ! एक अरक्षित निस्सहाय अबला पर अत्याचार न सहन कर आततायी कुमार कर्ण का मैंने वध किया था ।

मन्त्री—अबला की रक्षा करना आपका धर्म था ।

पुरु—परन्तु आम्भी मुझे इस धर्म-कार्य के लिए फाँसी पर लटकाना चाहते थे । इनकी पुत्री कुमारी उर्मिला ने मेरी जान बचा दी और इनकी इच्छा पूरी न होने दी ।

आम्भी—मुझे और लज्जित न करें । मैं ने अनेक अपराध किये हैं—अब पतन के पथ से ऊपर उठना चाहता हूँ ।

पुरु—(आवेश में भर कर) पतन के पथ से ऊपर उठना चाहते हो ? कटु शब्द मैं प्रयोग नहीं करना चाहता—फिर भी मैं समझता हूँ तुम्हारे लिए कोई भी शब्द कठोर नहीं है । तुम ने विदेशी यवन सिकन्दर को भारत की स्वाधीनता को पद-दलित करने के लिए बुलाया । मैं अपने और पिता जी के अपमान को भूल सकता हूँ—किन्तु देश के प्रति तुम्हारा विश्वासघात अक्षम्य है ।

आम्भी—मैं हार चुका हूँ, मुझे प्रतिशोध की भावना ने पागल बना दिया था । महाराज, मैंने सिकन्दर को भारत-भूमि में आगे बढ़ने के लिए उत्साहित किया है—किन्तु आप अवसर देंगे तो सम्राट् सिकन्दर के विश्व-विजय के स्वप्न को चकनाचूर मैं ही करूँगा ।

पुरु—आम्भी, तुम विषैले सर्प हो—तुम पर विश्वास नहीं करूँगा । यवनों से युद्ध करने की शक्ति मेरी भुजाओं में है । तुम्हारे जैसे विश्वासघातकों को दण्ड देने की भी । राज-हत्या का पाप तुमने किया है—देश-द्रोह का अपराध भी तुम्हारे सर पर है । बोलो, क्या दण्ड तुम्हें दिया जाय ? मुझ से द्वन्द्व युद्ध नहीं करना चाहते तो मुझे न्याय करना ही पड़ेगा ।

आम्भी—मैं अपने आप को आर्य और क्षत्रिय किस मुँह से कहूँ—मेरे भूतकाल ने मेरा मुँह बंद कर दिया है—किंतु, आप तो क्षत्रिय हैं—आर्य हैं—उदारता, क्षमा और दया को आप क्यों छोड़ते हैं। मैं अपना जीवन आपको समर्पित करता हूँ—शरण मे आता हूँ। क्या आप शरणागत को ठुकरा देंगे?

पुरु—हूँ—(सोच में पड़ जाते हैं)

मंत्री—(शङ्कित होकर) शत्रु पर दया करना राजनीति के विरुद्ध है, महाराज!

पुरु—किंतु, गुरुदेव ने तक्षशिला—विश्वविद्यालय के दीक्षान्त उत्सव पर आदेश दिया था कि पुरु, तुम्हारे राज्य की नींव सत्य, धर्म और दया पर होनी चाहिए। गुरुदेव की आज्ञा का मैं पालन करूँगा। आम्भी, जाओ, मैं ने तुम्हें क्षमा किया।

मंत्री—(साश्चर्य) क्षमा!

आम्भी—महाराज पुरु की जय! आपकी उदारता का मैं बदला चुकाऊँगा। सिकंदर को भारत से वापिस करूँगा।

पुरु—(सेनापति से) तक्षशिला-नरेश को आदर सहित झेलम पार पहुँचा दो।

सेनापति—जो आज्ञा।

(आम्भी और सेनापति का प्रस्थान)

पुरु—मंत्री जी, मेरी आत्मा इस समय बहुत संतुष्ट है।

मंत्री—किंतु मेरा मन आशंका से कांप रहा है। स्वार्थी पुरुष कभी वचन पर दृढ़ नहीं रहता। ऐसे समय जब कि विदेशी सैन्य-दल टिड्डी-दल की तरह मँडरा रहा है—अपने वैरी को चंगुल मे पाकर छोड़ देना वीरता का कार्य भले ही हो—किंतु बुद्धिमानी का नहीं। आपने जान-बूझ कर संकट मोल लिया है।

पुरु—सत्य है, आपका कथन सत्य ही है—किंतु संकट से डरकर मनुष्यता का पथ छोड़ देना आर्यों का धर्म नहीं है मंत्री जी! आइए, मेरे साथ चलिए, जरा झेलम के तट पर शत्रु की गति-विधि को देखा जाय।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—झेलम के पश्चिमीय तट पर सिकन्दर का सैनिक शिविर ।
समय—सायंकाल । शिविर की सजावट में यूनानी कला
स्पष्टरूप से प्रकट है जिस में रमणीयता के स्थान पर
भव्यता व्यापक रूप में पाई जाती है । शिविर में
यथास्थान शस्त्रास्त्र रखे हुए हैं जिन के निर्माण में भी
भारतीयता नहीं नजर आती । यूनानी सम्राट
सिकंदर और मुख्य सेनापति सल्यूकस बातें
करते हुए प्रवेश करते हैं ।]

सिकंदर—सेल्यूकस, हमारे सहायक आम्भी को तो महाराज पुरु ने पराजित करके बन्दी बना लिया है, इससे हमारी भारत-विजय की योजना मे कुछ बाधा तो पडेगी ।

सेल्यूकस—सम्राट् । यूनानियों को आपकी वीरता पर विश्वास है और पराजय शब्द से वे परिचित नहीं हैं ।

सिकंदर—मुझे भी अपने यूनानी सैनिकों पर अभिमान है, किंतु यह तो मानना ही पडेगा कि भारत की चप्पा-चप्पा भूमि पर पॉव रखने के लिए हमें जितना संघर्ष करना पडा है—उतना कहीं नहीं करना पडा ।

सेल्यूकस—भारतवासी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपने प्राणों पर खेलने को सदा प्रस्तुत रहते हैं, इस मे तो सन्देह नहीं है ।

सिकंदर—वे रणकुशल भी है—इसका प्रमाण महाराज पुरु ने दे दिया है । झेलम नदी से पार जाने के सारे नाके उन्होंने रोक दिये हैं—दिन पर दिन गुजरते जा रहे हैं किंतु हमे उस पार पहुँचने का अवसर ही नही मिलता ।

(एक यूनानी सैनिक का आना और सिकन्दर को अभिवादन करना)

सिकन्दर—क्या समाचार है, सैनिक।

सैनिक—एक [illegible] हमारे शिविर के पास मरा पाया गया है। उसके पास

सिकन्दर—(चौंक कर) मरा पाया गया है। किसने मारा उसे?

सैनिक—किसी हमारे ही सैनिक ने मारा होगा। शत्रु को मार डालने में कोई हानि

सिकन्दर—हानि का प्रश्न नहीं है सैनिक, यह प्रश्न है आदर्श का, रणनीति का, नैतिकता मनुष्यता और सभ्यता का। हम यूनानी भी आर्य हैं और भारतीय भी आर्य हैं। हमारे यहाँ दूत अवध्य है।

सैनिक—किसी सैनिक से भूल हो गई, सम्राट्। (एक पत्र देकर) उस दूत के पास यह पत्र था।

(सिकन्दर पत्र लेकर सेल्यूकस को देता है)

सिकन्दर—(सेल्यूकस से) पढ़ो, क्या लिखा है। (सैनिक से) तुम शिविर अध्यक्ष को मेरे पास भेजो।

(सैनिक का अभिवादन करके प्रस्थान)

(पत्र को मन ही मन पढ़कर, चौंक कर)

सेल्यूकस—उद्धत। अभिमानी॥ दुस्साहसी॥।

सिकन्दर—किसे इतने अपशब्द कह डाले, सेल्यूकस।

सेल्यूकस—पुरु को, सम्राट्। वह विश्व-विजयी सम्राट् सिकन्दर की शक्ति को नहीं जानता। जान-बूझ कर मौत को निमन्त्रण देता है।

सिकन्दर—क्या लिखा है?

सेल्यूकस—लिखा है—यूनानी सेना भारतभूमि की सीमा तुरन्त छोड़ दे, अन्यथा उनका अभिमान चूर्ण कर दिया जायगा।

सिकन्दर—एक देश-प्रेमी इसके अतिरिक्त और क्या लिखता ? हाँ—आगे पढो।

सेल्यूकस—लिखा है—मद्र-देश के स्वामी ने किसी के सामने मस्तक नही झुकाया—उसका मस्तक भारतीय वीरता का प्रतीक है—वह कटना जानता है—झुकना नहीं।

सिकन्दर—और सिकन्दर भी उसी को झुकाना चाहता है, जिसने झुकना नहीं जाना। वह मक्खन पर तलवार चलाने नहीं निकला है, चट्टानों से टकराने निकला है।

सेल्यूकस—पुरु को यूनान के विश्व-विजयी सम्राट् की शक्ति का अनुमान नहीं है। मुट्ठी भर सैनिक लेकर हमारी ईरान और गांधार को जीतने वाली सेना का वेग रोकना चाहता है।

(शिविर में अध्यक्ष का प्रवेश)

अध्यक्ष—(अभिवादन करके) आज्ञा सम्राट्।

सिकन्दर—अब आपकी आवश्यकता नहीं।

अध्यक्ष—(घबराकर) अर्थात् मुझे सेवा से पृथक् कर दिया गया। मेरा अपराध

सिकन्दर—(मुस्कराकर) नहीं, नहीं ! मैं चाहता था कि मद्र-देश के दूत की हमारे जिस सैनिक ने हत्या की है—तुम उस का पता लगाओ—उसे मृत्यु दण्ड देने की व्यवस्था करो। लेकिन अब इसकी आवश्यकता नहीं है। महाराज पुरु ने यूनानी स्वाभिमान को चुनौती दी है। उनके न झुकने वाले मस्तक को झुका कर ही मुझे चैन मिलेगा। (अध्यक्ष से) तुम जाओ।

(अध्यक्ष का प्रस्थान)

सेल्यूकस—निश्चय ही, सम्राट्। हमें बिना विलम्ब शत्रु पर आक्रमण

सिकन्दर—किन्तु झेलम

सेल्यूकस—आम्भी की दी हुई ७८ नौकाएँ हमारे पास हैं—नौकाओं का पुल बना कर अभी

सिकन्दर—अभी रातों-रात पार चलें। रात में युद्ध करना आर्यों के युद्ध-नियमों के विरुद्ध है। यूनान के मस्तक पर युद्ध-नीति के विरुद्ध चलने का कलंक सिकन्दर नहीं लगने देगा।

सेल्यूकस—फिर ?

सिकन्दर—प्रात जब पूर्व का आकाश सूर्य की रक्तिम किरणों से लाल होगा तब झेलम का पानी भी यूनानियों के रक्त से लाल होगा। हम शत्रु के तीरों का सामना करते हुए पार उतरेंगे। रात में उन्हें असावधान पाकर नहीं।

सेल्यूकस—किन्तु, यह तो आत्म-हत्या है

सिकन्दर—(चिन्ता में पड़कर) जान पड़ता है—मेरा विश्व-विजय का स्वप्न झेलम के पानी में सदा के लिए डूब जायगा।

(आम्भी का प्रवेश)

आम्भी—नहीं सम्राट्, आम्भी के जीवित रहते आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं।

सिकन्दर—(आश्चर्य) हैं। तुम आम्भी, क्या तुम्हारे बंदी होने का समाचार झूठ था ?

आम्भी—परम सत्य, सम्राट्। किन्तु वीरता के मद में मत्त रहने वाले पुरु को शब्द-जाल में फँसा कर उसके बन्धन से छूट आना आम्भी के लिये बाएँ हाथ का खेल है।

सिकन्दर—तुमने क्या कहा उनसे ?

आम्भी—मैंने कहा—आम्भी मुक्त होकर पुरु का मित्र और सिकंदर का शत्रु होगा।

सिकंदर—तुम बड़े चतुर हो आम्भी। हम तुम्हें उचित पुरस्कार देंगे।

आम्भी—पुरु की पराजय मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है, सम्राट्! इसी लिए आपसे निवेदन है कि इस समय शत्रु असावधान है। युद्ध पर विजय पाने की खुशी में वह उत्सव मना रहा है। इस समय हम पार जाकर शत्रु पर धावा बोल सकते हैं। मैं उस स्थान को जानता हूँ जहाँ झेलम में जल कम है—वहाँ से सहज ही हमारी सेना पार निकल जायगी।

(बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई देती है)

सेल्यूकस—और यह बादलों की गड़गड़ाहट कह रही है कि अभी जोर की वर्षा होगी। घटाओं ने घोर अंधकार कर दिया है—अंधकार में हमारी सेना के जाने का पता भी शत्रु को नहीं लगेगा।

आम्भी—और वर्षा होने से जो कीचड़ होगा उससे पुरु की गज सेना बेकार हो जायगी। ऐसा सुयोग फिर नहीं मिलेगा, सम्राट्।

सिकंदर—आप लोगों की इच्छा पूरी हो। चलो, चलकर झेलम पार जाने का प्रबन्ध किया जाय।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—ऊर्मिला का तम्बू । समय—रात का पहला प्रहर । ऊर्मिला सो रही है । आम्भी का प्रवेश]

आम्भी—बेटी ऊर्मिला, उठो. हम अभी यहाँ से कूच कर रहे हैं। सेनाएँ तैयार है ।

ऊर्मिला—किधर, पिता जी ।

आम्भी—यवन-सेना यहाँ से नदी पार करने मे असमर्थ है। सिकंदर चाहता है कि किसी दूसरे स्थान से झेलम पार करके मद्र-सेना पर चढ़ाई की जाय ।

ऊर्मिला—तो मै क्या करू ?

आम्भी—हमारे साथ नही चलोगी क्या ?

ऊर्मिला —नहीं । आपको भी नहीं जाने दूँगी। आप महाराज पुरु को वचन दे चुके है। मैं अभी घडी भर पहले पुरु से मिलकर आ रही हूँ। आपने उनको अपना अधिपति स्वीकार किया है। आपने यवन-सेनाओं को इस देश से बाहर निकालने मे उन्हें सहायता देने का वचन दिया है ।

आम्भी—बेटी, तुम भोली हो। तुम राजनीति की बातें क्या जानो।

ऊर्मिला—मै इतना तो जानती हूँ कि पुरु ने परम उदारता से आपको छोड दिया है। कृतघ्नता महा पाप है। मै यह भी जानती हूँ कि देश-द्रोही नरक का अधिकारी होता है। आप अपने देश को यवनों द्वारा पराजित होने मे सहायता न दीजिये ।

आम्भी—ऊर्मिला, पुरु मेरा शत्रु है। शत्रु को परास्त करना मेरा धर्म है। किस ढंग से वह परास्त हो सकता है, नीति मे इसका

कोई नियम नहीं है । सब मानना उचित है । तुम इन बातों को क्या समझो ?

अमिला—मैं आपसे फिर प्रार्थना करती हूँ कि पुराने वैर-भावों का त्याग कर पुरु का साथ दें । वह आपका शत्रु नहीं है । आपको क्षमा-प्रदान करके उसने मित्रता का प्रमाण दिया है । सिकन्दर इतना भी न कर सकेगा । अवसर पाकर वह आपको धोखा दे देगा । विदेशी को मित्र समझना, पड़ोसी को शत्रु बनाना, बुद्धिसंगत नहीं है ।

आम्भी—(क्रोध से)—अमिला, तुम मुझे निर्बुद्धि समझती हो ।

अमिला—नहीं पिता जी, मैं तो साधारण नीति की बात कहती हूं ।

आम्भी—बस, बस । मैं जानता हूं । तुम पुरु का पक्ष करती हो । तुम पहले भी उसकी सहायता कर चुकी हो । याद है जब तुमने पुरु को कारागार से निकाल दिया था । यदि तुमने राज-मुद्रा चुरा कर और उसकी मुक्ति का आज्ञापत्र लिखकर उसकी सहायता न की होती तो आज आम्भी मद्र देश का सम्राट् होता । (उठ खड़े होकर) और अब भी मैं देख आया हूँ । तुम्हारा घोड़ा 'रत्न' पुरु की सवारी का काम दे रहा है । बेटी । तुम यह मेरे साथ अन्याय कर रही हो । मद्र-देश का सम्राट् बनना मेरे जीवन का एक मात्र लक्ष्य है । मेरे पश्चात् तुम्हीं मद्र-देश की स्वामिनी बनोगी ।

अमिला—मैं ऐसा साम्राज्य नहीं चाहती । मुझे विश्वास नहीं कि सिकन्दर या सेल्यूकस हमें यह राज्य भोगने का अवसर देगा ।

आम्भी—मैं तुम्हें इसका विश्वास दिलाता हूँ ।

ऊर्मिला—मैं यह भी कैसे मान लूँ कि मद्र-देश आपके हाथ आ जायगा। पुरु परम शूर है। उसको जीतना असम्भव है।

आम्भी—मैं तुम्हे एक शुभ समाचार सुना दूँ। अभिसार-नरेश हमारे विरुद्ध नहीं लड़ेंगे।

ऊर्मिला—क्यों? उन्होंने तो सिकदर को लिख भेजा था कि हम यह सहन न कर सकेंगे कि कोई विदेशी हमारी पवित्र मातृभूमि मे आकर पॉव रखे।

आम्भी—हॉ, वे सिकदर की सहायता तो नहीं करेंगे, परन्तु उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है कि वे पुरु से मिल कर हमारा विरोध नहीं करेंगे।

ऊर्मिला—बड़ा नीच है अभिसार का राजा।

आम्भी—वे तो तुम्हारी स्तुति करते नहीं थकते और तुम उनकी यों निंदा करती हो। मैंने जब उनसे यह प्रस्ताव किया कि आप ऊर्मिला को अपनी रानी बनायें तो उनकी बाछें खिल गईं।

ऊर्मिला—मै समझी। अर्थात् आप उनसे सौदा करते रहे है। आप अपनी बेटी देकर उनसे पुरु का विरोध चाहते रहे। नहीं, पिता जी। मै ने मन से पुरु को अपना पति धारण कर लिया है। आर्यकन्या एक पति के होते हुए दूसरा विवाह न करेगी।

आम्भी—बेटी ऊर्मिला, राजनीतिक . .

ऊर्मिला—मै राजनीतिक विवाह नहीं करूँगी। मै धर्म-सम्बन्ध चाहती हूँ।

आम्भी—ऊर्मिला, मैं पहले ही बहुत दुखी हूँ। मुझे और नरक मे मत धकेलो। मै अभिसार-नरेश को क्या जवाब दूँगा? मै नही चाहता कि तुम पुरु से विवाह करो। पुरु मेरा शत्रु है। क्या मेरे शत्रु से विवाह कर लोगी? ऐसी सन्तान!

ऊर्मिला—अच्छा पिता जी, मैं विवाह ही न करूँगी। मैं जीवन भर कुँवारी रह कर आपकी सेवा करूँगी। ठीक है ना!

आम्भी—मेरी सेवा यही है कि अभिसार नरेश को अपना जीवन-साथी स्वीकार करो।

ऊर्मिला—आर्यकन्या से आप यह बात फिर न कहिये। मैं. .

[नेपथ्य में भेरी का शब्द]

आम्भी—यह सुनो। सेनाएँ कूच कर रही हैं। मैं जाता हूँ। तुम क्या यहीं रहोगी?

ऊर्मिला—हाँ, यहीं।

आम्भी—तुम तो कहती थीं कि मैं युद्ध का दृश्य देखूँगी। क्षत्रियों को लड़ते देखूँगी।

ऊर्मिला—हाँ।

[नेपथ्य में आवाज—'महाराज आम्भी की जय हो']

आम्भी—अच्छा, मैं जाता हूँ। तुम चाहो तो तक्षशिला लौट जाओ।

ऊर्मिला—मुझे भी अपने कर्त्तव्य का निश्चय करना ही होगा।

[आम्भी का प्रस्थान—इसके बाद ऊर्मिला भी दूसरी ओर चली जाती है]

पट-परिवर्तन

चौथा दृश्य

[झेलम के पूर्वी तट पर एक जगल में सिकंदर का तम्बू लगा है। समय—प्रात काल। सिकदर बीच में एक शानदार सिंहासन पर बैठा है। आस-पास आम्भी, सेल्यूकस आदि हैं]

सिकदर—महाराज पुरु को सम्मान के साथ भीतर लाओ।

(सैनिक का बाहर जाना)

(आम्भी से) तुम्हारी राजनीति सफल रही। परन्तु मैं समझता हूँ—यह विजय हमारा सर्वनाश है। सिकदर की नाड़ियों में भी आर्यों का खून है। आज तक उसने ऐसे ओछे उपायों से काम न लिया था। रात के अन्धेरे मे छुप-छुप कर जाना, सोई हुई मद्र-सेना पर आक्रमण करना, वीरों को शोभा नहीं देता। यदि रात को वर्षा न हो जाती तो इस धरती की मिट्टी हमारी सेना के खून से लाल हो गई होती। वर्षा के कारण कीचड मे पुरु की गज-सेना फिसलने लगी। पुरु का हाथी गिर पड़ा और चिंघाड़ मारता हुआ भाग निकला। मद्र-सेना ने समझा 'पुरु हार गया।' सेना भाग खडी हुई। हमारे घुडसवारों ने पीछा किया।

आम्भी—परमात्मा ने वर्षा करके हमे आशीर्वाद दिया।

सिकदर—आम्भी, हम ने धोका किया। पुरु महावीर है। वह भागते हुए हाथी से कूद पडा और एक घोडे पर सवार होकर मुड़ा, परन्तु न जाने वह घोडा क्यों विदक गया। पुरु ने घोड़ा छोड़ दिया और पैदल ही हमारे घुडसवारों पर टूट पड़ा और ऐसे तीखे वार किए कि पलक मारते-मारते १००—१५० यवनों का वध कर डाला। ओह, कितना तेज था उस मे। उसकी दोनों तलवारें टूट गई। कुछ क्षणों तक वह ढाल से अपनी रक्षा करता रहा। यदि वहाँ पर उसका एक भी साथी होता तो उसे तलवार देकर बचा लेता।

परन्तु हमारे सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। इस अवस्था में भी वह लड़ा और ५ आदमियों को नंगी पर पटक कर मार डाला।

आम्भी—देखा ना, आप तो न्याय-न्याय की पुकार मचा रहे हैं, और पुरु अब तक गुरना में बाज न आया। कितना अत्याचार किया उसने—

सिकन्दर—नहीं, आम्भी, अत्याचार हम ने ही किया। जब उसकी तलवार टूट गई थी तब उस पर वार करना न्यायोचित नहीं था।

आम्भी—मैं तो एक बात जानता हूं—अन्त भला सो भला। विजय हमारे हाथ रही है।

[इसी समय कई सैनिकों के संग पुरु का प्रवेश]

सिकन्दर—नहीं, नहीं, वास्तविक विजय पुरु को प्राप्त हुई है। हम हार गये। हम ने धर्म का त्याग किया। कायरता का प्रदर्शन किया। (पुरु से) आप हमारे बंदी हैं। कहिये आप से कैसा व्यवहार किया जाय।

पुरु—जैसा राजा को राजा से करना चाहिए।

सिकन्दर—ठीक है। मैं ने अनेक देशों को विजय किया, परन्तु आप जैसा वीर-धीर योद्धा मैं ने आज तक न देखा था। मेरा भारत में आना सफल हुआ।

आम्भी—आप अब इतने बड़े साम्राज्य के स्वामी बने हैं।

सिकन्दर—नहीं, सिंधु नदी से लेकर यहां तक हम ने जितने राज्य जीते हैं, उनके अधिपति महाराजाधिराज पुरु हैं।

आम्भी—[तलमलाते हुए] हैं। पुरु। और मैं ?

सिकन्दर—चौंकिए नहीं, आम्भी। आप के योग्य पुरस्कार आप भी पाएंगे [सैनिकों से] सम्राट् पुरु की बेड़ियां खोल दो।

[सैनिक बेड़ियाँ खोलते हैं]

[सेल्यूकस का प्रवेश]

सेल्यूकस—जहाँपनाह ! मद्र-देश की सेना ने हमारी सेना पर फिर आक्रमण कर दिया ।

पुरु—वह क्यों ?

सेल्यूकस—तक्षशिला की राजकुमारी ऊर्मिला से उत्तेजना पाकर भागते हुए मद्र-सैनिक थम गये । राजकुमारी उसी घोड़े पर सवार है जिस पर पकड़े जाने से पहले पुरु थे ।

पुरु—'रत्न' राजकुमारी का ही घोड़ा है । उसने वह मुझे भेंट किया था ।

सिकंदर—समझा । सेल्यूकस, तुरन्त जाकर सन्धि की श्वेत ध्वजा फहरा दो और राजकुमारी से स्वयं जाकर कहो कि सिकंदर भारत की देवी को प्रणाम करता है । कह दो—पुरु सुरक्षित है । चिन्ता मत करो । हम ने उनको उत्तर-भारत का सम्राट् मान लिया है ।

सेल्यूकस—जो आज्ञा ।

[जाने लगता है]

पुरु—ठहरो । [अंगूठी उतारते हुए] यह अंगूठी राजकुमारी ऊर्मिला को देकर विश्वास दिलाओ कि हम......[सोच कर] अच्छा, तुम ठहरो । हम स्वयं तुम्हारे साथ चलते हैं ।

सिकंदर—हम भी चलेंगे ।

पुरु—नहीं, मित्रवर, ऐसी अवस्था में आपका जाना उचित नहीं है, राजकुमारी तथा मद्र-सैनिक उत्तेजना में कहीं आप पर आक्रमण न कर दें । आप यहीं रहें । हम अभी आ रहे हैं । चलो, सेल्यूकस ।

[पुरु और सेल्यूकस का जाना]

आम्भी—महाराज आपने अपने वचन का पालन नहीं किया।

सिकन्दर—देश के प्रति विश्वासघात करने वाला वचन-पालन की बात किस मुँह से कहता है। विश्वासघात तो तुम्हारा स्वभाव है, आम्भी—पुरु की दया ने तुम्हें जीवन-दान दिया था—उसी की जान के तुम ग्राहक बने—कृतघ्न कुत्ते!

आम्भी—भारत की सीमा में आप मेरी ही सहायता से आये हैं, सम्राट्! और आज मुझ को शत्रु समझ रहे हैं। पता नहीं, आप यह नाटक कर रहे हैं—या सत्य कह रहे हैं।

सिकन्दर—नाटक करना सिकन्दर का काम नहीं है। नाटक तो आप करते रहे हैं, आम्भी। आपने समझा है कि सिकन्दर ने उस नाटक को जाना नहीं—यह आपकी मूर्खता है। याद रखो देश द्रोही आम्भी का, शत्रु भी सम्मान नहीं करता। देश पर मर मिटना देश-द्रोह द्वारा सुख, वैभव, प्रभुता प्राप्त करने से कहीं श्रेयस्कर है।

(पुरु, सेल्यूकस और ऊर्मिला का प्रवेश)

सिकन्दर—आओ राजकुमारी ऊर्मिला, तुमने भारत के मान को चार चाँद लगा दिए हैं। मैं तुम से प्रसन्न हूँ। (आम्भी से) आप ऊर्मिला जैसी वीर बाला के पिता हैं—इस लिए मैं आपको भी क्षमा करता हूँ। (ऊर्मिला से) इधर आओ—बेटी। मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। महाराज पुरु, आप भी इधर आइए। (पुरु को ऊर्मिला का हाथ पकड़ा कर) आज से तक्षशिला और मद्र दोनों देश एक-प्राण हों—यह मेरी कामना है। तक्षशिला और मद्र ही नहीं—सम्पूर्ण भारत एकता के महत्व को समझे और अपनी प्राचीन और उच्च संस्कृति की रक्षा करे। झेलम के

ार भारत की जो झाँकी मैंने देख ली है उससे मेरी
तोप हुआ है—ऐसी वीर जाति को न मैं गुलाम बना
न उसे मिटाने का सपना देख सकता हूँ। केवल मित्रता
से मिला कर मैं वापिस जाने का निश्चय कर चुका हूँ।

—सम्राट् सिकदर की जय।

दर—नहीं—बोलिए—'भारतभूमि की जय।'

—भारतभूमि की जय।

[पटाक्षेप]

नाटक के पात्र

पुरुष—

पात्र	परिचय
राम	रघुकुल-नन्दन अयोध्यानरेश
लक्ष्मण	राम के लघु भ्राता
वाल्मीकि	महर्षि [रामायण के रचयिता]
वसिष्ठ	मुनि [राम के कुलगुरु]
लव, कुश	राम के पुत्र
जनक	मिथिला-नरेश, सीता के पिता
चन्द्रकेतु	लक्ष्मण के पुत्र
ऋषिकुमार	वाल्मीकि ऋषि के आश्रमवासी शिष्य
दुर्मुख	राम का गुप्तचर
सुमन्त्र	चन्द्रकेतु के सारथि और अयोध्या के मंत्री
सिपाही	चन्द्रकेतु के सैनिक
	प्रहरी, द्वारपाल, चोबदार आदि

स्त्री—

पात्र	परिचय
कौसल्या	राम की माता
अरुन्धती	वसिष्ठ की पत्नी
सीता	जनक-दुलारी, राम की पत्नी, लव-कुश की माता
सखी	वन-सहचरी

परिचय

इस नाटक के लेखक आचार्य चतुरसेन दिल्ली में रहते हैं और गत ३५ वर्षों से हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। आप प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानी-लेखक और नाटककार हैं। मिश्रबन्धुओं ने आपको विनोद में इस युग का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी गद्य लेखक स्वीकार किया है। इस समय तक आपके ६०।७० के लगभग ग्रन्थ विविध विषयों पर प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त अनेक एकांकी नाटक विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके कई बड़े नाटक प्रकाश में आ चुके हैं जिनमें अजीतसिंह, राजसिंह, अमर राठौर, श्रीराम और उत्सर्ग मुख्य हैं। प्रस्तुत नाटक उत्तर रामचरित्र की छाया पर लिखा गया है।

चौदह वर्ष का वनवास पूरा करने के बाद श्रीराम और सीता अयोध्या में राज्य कर रहे थे कि एक दिन नगर में बड़ी प्रभावपूर्ण घटना घटी। एक धोबी अपनी धोबन से, जो कि बिना उससे पूछे अपने बाप के घर चली गई थी, नाराज होकर कहने लगा कि मैं रामचन्द्र नहीं हूँ जो राक्षस के घर गई हुई सीता को फिर अपने घर रख लिया। जब रामचन्द्रजी ने यह बात सुनी तो उन्होंने सोचा कि जब प्रजा के मन में ऐसा अपवाद है तो कहीं ऐसा न हो कि प्रजा में बुरा आदर्श कायम हो जाय। ऐसा विचार कर उन्होंने गर्भवती सीता को त्याग कर वन में भिजवा दिया। वहां वह वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगी। वहीं उसने लव और कुश दो पुत्र पैदा हुए।

१८ वर्ष बाद रामचन्द्रजी ने अश्वमेध यज्ञ किया। अश्वमेध का घोड़ा लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की रक्षा में प्रांत-प्रांत में फिरने लगा। जब वह घोड़ा वाल्मीकि जी के आश्रम में पहुँचा तो लव और कुश ने बांध लिया। चन्द्रकेतु ने लव-कुश से युद्ध किया। बहुत से सैनिक मारे गये और लव-कुश के युद्ध-कौशल ने चन्द्रकेतु को परेशान कर दिया। इतने में महाराज रामचन्द्रजी ने आकर युद्ध रोक दिया और जब बाद में उन्हें मालूम हुआ कि यह मेरे ही पुत्र हैं तो उनका प्रेम उमड़ आया। यहीं पर सीता जी से भी भेंट हुई। सीता ने अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए धरती माता से प्रार्थना की। धरती फट गई और सीता उसमें समा गई।

पहला दृश्य

[अयोध्या का राजमहल। सन्ध्या का समय। राम और सीता सिंहासन पर विराजमान हैं। लक्ष्मण उनसे कुछ नीचे बैठे हैं। इनके आगे चित्र पड़े हैं जो वे एक एक कर सीता और श्रीराम को दिखा रहे हैं]

लक्ष्मण—देखिए भाभी, कैसे अच्छे चित्र बने हैं। इन मे हमारे सपूर्ण जीवन की कथा आ गई है।

राम—वत्स लक्ष्मण, देवी के मन को रिझाने के तुम्हें खूब ढग आते हैं। देखें-देखें, कैसे चित्र हैं? अरे, यह तो जनकपुरी की छवि है।

सीता—अहा, नये खिले हुए कमल-जैसे महाराज कैसे चुपचाप महात्मा विश्वामित्र के पास खडे हैं और देवरजी भी कैसे सलोने बने है! देखिए, पिता जी अचरज मे भरकर आपका रूप निहार रहे हैं।

लक्ष्मण—देखिए भाभी, यह गुरु वसिष्ठ की आप के पिता पूजा कर रहे हैं। विवाह का मण्डप सजा है। राजा, रानी, ऋषि, मुनि, देव गन्धर्वों की भीड लगी है। यह आप हैं, यह भाभी माण्डवी हैं, यह वहू श्रुतिकीर्ति है।

सीता—अजी देवरजी, यह चौथी कौन है।

लक्ष्मण—यह . जाने दीजिए। यह देखिए, परशुराम जी हैं?

सीता—मै डर गई।

राम—(दूसरी ओर देखकर) अरे, यह तो अयोध्या की उस समय की छवि है, जब हम विवाह करके लौटे थे। कैसा आनन्द मगलाचार हो रहा है।

सीता—आह, महाराज की आँखों मे आँसू क्यों आ गये ?

राम—देवी, पिता जी की छवि देख उनके चरणों की याद आ गई। हाय, वे चरण अब कहाँ ?

लक्ष्मण—यह मन्थरा और मँझली माता है ?

राम—(दूसरा चित्र देखकर) अहा, इस चित्र मे गगा की धारा कैसी बह रही है, ऋषियों के आश्रम कैसे भले मालूम देते है।

लक्ष्मण—धन्य महाराज। आपने मँझली माँ का चित्र तो देखा भी अनदेखा कर दिया।

राम—जाने दो भाई। यह देखो, यही चित्रकूट के रास्ते मे वह बड का पेड है, जिसे भारद्वाज मुनि ने हमे बताया था। देखो, यमुना के जलमे इसकी परछाईं कैसी काँपती हुई-सी दीख रही है।

सीता—क्या महाराज को अभी तक इसकी स्मृति बनी है ?

राम—भला, इसे मै भूल सकता हूँ ? इसी के नीचे बैठकर मैंने तुम्हारे पैरों से काँटा निकाला था और तुमने अपने आँचल से मेरे मुँह का पसीना पोंछा था। अरे। देवी, तुम रोने क्यों लगीं ?

सीता—महाराज, उस दु ख मे भी कैसा सुख था। राज्य का यह बोझ तो जैसे हमे दबाये डालता है। महाराज, मेरे मन मे एक सधौरी हुई है।

राम—कैसी सधौरी देवी ?

सीता—मै चाहती हू कि एक बार फिर वन में विहार करूँ और जगल मे नदी के जल मे किलोलें करूँ। अहा। वे दिन भी कैसे प्यारे थे, जब चाँदनी रात मे गोदावरी के किनारे हमारा

हरियाली फूल हमें देखकर हँसते थे लता हमसे अठखेलियाँ करती थीं तारे हमें झाँक-झाँक कर मुस्कराते थे चम्पा और चमेली की कलियों से भरी डारें झूम-झूम कर हमें पास बुलाती थीं।

राम—देवी, राजमहल के ये महाभोग पाकर भी आज तुम्हें वन की याद आ रही है?

सीता—महाराज, यह राजमहल, गहने, हीरे, मोती, दास, दासी, जैसे हमारे ऊपर बोझ है। तब हम और आप बिलकुल पास पास थे।

राम—और अब?

सीता—अब राजनीति हमारे बीच में आ गई है। स्वामी, मुझे ऐसा मालूम होता है जैसा हम लोग पल-पल में दूर हो रहे हैं। आप हो गये राजा, मैं हो गई रानी। राज-काज आपको न जाने कहाँ कहाँ खींच ले जाता है और इन महलों की दीवारों के भीतर मैं हीरे मोतियों की जंजीरों से बंधी पड़ी रहती हूँ। मेरी इच्छा है, महाराज, एक बार फिर वन का आनन्द उठाया जाय, ऋषियों का दर्शन करके उनका आशीर्वाद लिया जाय।

राम—[हँस कर] ऐसी ही इच्छा है तो लक्ष्मण कल तुम्हें लेजाकर तुम्हारा वन-विहार करा लावेंगे, प्रिये।

सीता—और आप?

राम—तुम तो कह ही चुकी हो। राजा को विश्राम कहाँ? भाई लक्ष्मण, कल भोर होते ही रथ जोतकर देवी को गंगातीर के ऋषियों का दर्शन करा लाना।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराज।

[कंचुकी आता है]

कंचुकी—श्रीमहाराजाधिराज की जय हो।

राम—अरे भाई, क्या समाचार है ?

कंचुकी—महाराज का चर दुर्मुख उपस्थित है।

राम—अच्छा भाई, उसे यहीं भेज दो। [सीता से] सीते। तुम जाओ, आराम करो। मैं थोडा राजकाज कर अभी आता हूँ। भाई लक्ष्मण, तुम भी जाओ। रथ तैयार रखने की आज्ञा दे दो। भोर ही देवी को वन-विहार के लिये ले जाना।

लक्ष्मण—जो महाराज की आज्ञा। (जाते हैं)

सीता—महाराज, वहाँ मैं राजसी आडम्बर में नहीं जाऊँगी। सेना, आदि की आवश्यकता नहीं। अकेले देवर जी ही ठीक हैं।

राम—अच्छा प्रिये, ऐसा ही होगा। जाओ, अब आराम करो।

(सीता जी जाती हैं)

(दुर्मुख आता है)

दुर्मुख—महाराज की जय हो।

राम—कहो भाई, नगर का क्या समाचार है ?

दुर्मुख—सब नगर वाले सुखी हैं, महाराज की जयजय-कार मनाते हैं।

राम—वे क्या कहते हैं, विस्तार से कहो ?

दुर्मुख—कहते हैं महाराज ने अपने गुणों से स्वर्गवासी महाराजा दशरथ को भी भुला दिया।

राम—अरे भाई, यह तो प्रशंसा हुई। कुछ हमारी बुराईयों भी तो बताओ ?

दुर्मुख—महाराज !

राम—कहो निर्भय होके।

दुर्मुख—कैसे कहूँ ?

राम—हाँ भैया। तुम्हारी राज-सेवा यही है कि जो कुछ सुनो सच-सच अपने राजा से कहो।

दुर्मुख—तो सुनिए महाराज। (रोने लगता है)

राम—अरे, तुम रोते हो! क्या समाचार है?

दुर्मुख—महाराज, मुझे बाँधकर बंदी कर लीजिए। मैं यह काम नहीं कर सकता।

(पैरों में लोट जाता है)

राम—कहो, सब कुछ निर्भय कहो।

दुर्मुख—नगर का एक धोबी है।

राम—धोबी! उसे क्या दुःख है?

दुर्मुख—उसकी स्त्री बिना उससे कहे पीहर चली गई थी।

राम—उसे पति की आज्ञा लेनी चाहिए थी।

दुर्मुख—महाराज, जब वह लौटकर दूसरे दिन आई तो धोबी ने उसे बहुत पीटा।

राम—बहुत बुरा किया। स्त्री को पीटना

दुर्मुख—और कहा

राम—क्या कहा?

दुर्मुख—कैसे कहूँ।

राम—कहो भाई, क्या कहा?

दुर्मुख—कहा—'क्या मुझे भी राम समझ लिया है कि जिस ने राक्षस के घर मे रही स्त्री को घर मे रख लिया।'

राम—आह! यह कहा!

दुर्मुख—महाराज, दास को क्षमा हो।

राम—तुम्हारा क्या दोष है? अच्छा, अब तुम जाओ।

[दुर्मुख रोता हुआ जाता है]

राम—[स्वगत] अरे हृदय, तू फट जा । मेरी सती सीता अब नीच लोगों की चर्चा की वस्तु हो गई। अरे अयोध्यावासियो, मैंने तो सदा तुम्हारी मनचाही की, कभी धर्म न छोड़ा । अब तुम मेरी सीता को मुझसे अलग किया चाहते हो ? मेरी पसलियाँ तोड लो, मेरी नस-नस खींच लो, पर पतिव्रता जनक-दुलारी को, अयोध्या की राजलक्ष्मी को मुझसे दूर न करो। अरे ! तुम सीता को मुझसे अधिक क्या जानते हो ? या मुझको तुम नीच समझते हो ? नहीं, मैंने सदा अपनी बलि दी और अब सब से बडी बलि दूँगा। प्रजा-रंजन के लिए सीता को त्याग दूँगा। हाय ! वह महल मे मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी । प्रातःकाल वह उमंग मे भरी गंगा-तीर जायगी, पर फिर वहां से लौटकर न आयगी। जानकी, तेरा भाग्य कैसा है ? पापी राम की स्त्री बनने का फल पा। हाय रे राजधर्म ! [रोते हैं, फिर आँसू पोछ कर] अरे हृदय, पत्थर का बन। मै प्रजा का अपवाद नहीं सुन सकता। अच्छा, मैंने अपनी प्यारी निरपराध सीता को त्यागा, जिसे ढूँढते हुए लंका तक गया, समुद्र का पुल बाँधा और रावण को मारा। [पुकारकर] पहरे पर कौन है ?

[कंचुकी आती है]

कञ्चुकी—महाराजाधिराज की जय हो। सेवक उपस्थित है।

राम—देखो, भाई लक्ष्मण को अभी भेज दो ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा महाराज ।

राम—[आँखों पर हाथ रखकर सोच में पड़ जाते हैं । लक्ष्मण के आने की आहट पाकर] कौन है ? भाई लक्ष्मण, यहाँ आओ और पास। मेरे सुख-दुःख के साथी भाई ! अरे वीर !

[फूट-फूट कर रोते हैं]

लक्ष्मण—महाराज, क्या हुआ ? किसने महाराज को दुःखित किया ? मेरे रहते कौन महाराज को दुःखी कर गया ? महाराज ! देव गन्धर्व, दानव और मनुष्य जो अपराधी होगा, उसे मैं जीता न छोड़ूँगा। अरे, महाराज मूर्छित हो गये। हाँ हाँ—

राम—[होश में आकर] नहीं भैया, मैं अच्छा हूँ। वत्स लक्ष्मण, अधीर मत होना।

लक्ष्मण—महाराज क्या कह रहे हैं ?

राम—हाँ, ठीक है। तनिक सहारा देकर बिठा दो भाई। तुम ठीक कहते हो लक्ष्मण, राजा न किसी का भाई, न पति। क्यों ?

लक्ष्मण—क्यों महाराज ?

राम—वत्स लक्ष्मण, तुम मुझे सदा महाराज ही कहते हो भैया नहीं कहते।

लक्ष्मण—आप महाराज ही तो हैं।

राम—अच्छी बात है। तो लक्ष्मण, एक राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—कौन-सी आज्ञा।

राम—बिना विलम्ब पालन करना होगा।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराज।

राम—कल सूरज निकलने से पहले महारानी सीता को...

लक्ष्मण—वन ले जाना होगा ?

राम—हाँ, गंगा के उस पार—ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में...

लक्ष्मण—भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में।

राम—नहीं, नहीं। आश्रम के पास, देवी सीता को छोड़ आओ।

लक्ष्मण—छोड़ आऊँ !

राम—हाँ।

लक्ष्मण—क्यों महाराज ?

राम—यह राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—महाराज।

राम—अब कुछ मत कहो लक्ष्मण।

लक्ष्मण—क्या महाराज ने देवी सीता को त्याग दिया ?

राम—हाँ।

लक्ष्मण—उनका अपराध ?

राम—पूछो मत।

लक्ष्मण—महाराज, आप उस महारानी को त्याग रहे हैं, जो शीघ्र ही माता बनने वाली हैं।

राम—जानता हूँ।

लक्ष्मण—दुहाई महाराज की। मैं विद्रोह करूँगा।

राम—राजाज्ञा हो चुकी, तुम्हें इसका पालन करना होगा।

लक्ष्मण—महाराज, मुझे मार डालिए।

राम—लक्ष्मण, राजाज्ञा का पालन करो।

लक्ष्मण—हाय महाराज!

राम—जाओ वत्स। सूरज निकलने से पहले। समझ गये ?

लक्ष्मण—[छाती में घूसा मार कर] सूरज निकलने से पहले, मैं मर जाऊँ तो अच्छा।

[रोते हुए जाते हैं]

दूसरा दृश्य

([illegible] आश्रम [illegible] सीता और लक्ष्मण [illegible] ।)

सीता—लक्ष्मण, आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ ।

लक्ष्मण—हां भाभी ।

सीता—पर तुम बड़े उदास हो रहे हो ।

लक्ष्मण—क्या मैं ? नहीं तो । अच्छा, उतरिए । महात्मा वाल्मीकि का आश्रम आ गया ।

सीता—क्या सच ? अहा । ऋषि के दर्शन करके आज आंखें सफल होंगी । लक्ष्मण महाराज कितने अच्छे हैं ।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—देखो, गंगा कैसी कलकल करती बह रही है ।

लक्ष्मण—हां, भाभी ।

सीता—और ऋषियों की कुटियों से होम का धुआँ कैसे उठ रहा है । ब्रह्मचारी वेदपाठ कर रहे हैं । उनकी ध्वनि कैसी प्यारी लग रही है ।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—मैं आज गंगा में खूब विहार करूँगी । सुन रहे हो न लक्ष्मण ?

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—अरे । तुम किस सोच में पड़े हो ? आओ इस पत्थर पर थोड़ा बैठकर आराम कर लें ।

लक्ष्मण—भाभी, अब मैं जाऊँगा ।

सीता—जाओगे । कहाँ जाओगे ?

लक्ष्मण—अयोध्या को ।

सीता—अयोध्या को।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—वाह! देवरजी! आये देर न हुई, अभी जाओगे। मैं तो आज दिन-भर वन मे किलोल करूँगी। वाह! भला, वन की यह बहार महलों से कहाँ?

लक्ष्मण—तो भाभी, मुझे आज्ञा दीजिए।

सीता—कैसे अच्छे फूल खिले हैं। कैसी भीनी महक फैल रही है, देवर जी!

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—हम महाराज के लिए बहुत से फूल ले चलेंगे।

लक्ष्मण—भाभी, अब मै जाऊँगा।

सीता—कहाँ देवर जी?

लक्ष्मण अयोध्या को।

सीता—अभी हम नहीं चलेंगे।

लक्ष्मण—पर मै जाऊँगा, भाभी।

सीता—और मैं?

लक्ष्मण—आप यहीं रहेंगी।

सीता—मै?

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—अकेली?

लक्ष्मण—महात्मा वाल्मीकि का आश्रम तो पास ही है।

सीता—तुम्हारा मतलब क्या है लक्ष्मण?

लक्ष्मण—महाराज की आज्ञा है।

सीता—महाराज की आज्ञा है।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—महाराज से कहना, मेरे उस हिरन के बच्चे को सदा प्यार करते रहें। हाय! उसे तो बिना मेरी गोद के कहीं एक पल चैन ही नहीं पड़ता था।

लक्ष्मण—अच्छा भाभी।

सीता—लक्ष्मण, सब बहुओं को असीस देना। वे सदा सुहागिन रहें।

लक्ष्मण—अच्छा।

सीता—अब जाओ तुम।

लक्ष्मण—मैं चला भाभी।

[जाते हैं]

सीता—गये, तेज और विनय के अवतार, बड़े भाई की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा मानने वाले जती लक्ष्मण; जिन्होंने अपनी इच्छा से चौदह वर्ष वन में नींद और भूख को जीत कर हमारी सेवा की, जिन्होंने कभी आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखा। धन्य लक्ष्मण, धन्य देवर। तुम-सा देवर, तुम सा भाई दुनिया में न हुआ न होगा। जाओ परमेश्वर तुम्हारा भला करें। लो- वे गंगा पार उतर गये वे रथ पर बैठ गये। सपने की तरह अयोध्या के सुख सब खो गये। अब महाराज के मीठे प्यारे बैन कब सुनने को मिलेंगे? कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं। हाय रे सीता के भाग्य। आह, यह कैसी पीर उठी। अरे, इस अभागिनी को कोई सँभालो। अरे। मैं अयोध्या के महाप्रतापी महाराज की महारानी हूँ, पर इस समय कोई दास-दासी, सखी-सहेली तक पास नहीं। भगवती गंगा, क्या तुम्हारी गोद में आऊँ? आह। मन में प्यारे पुत्र का मुखड़ा देखने की कितनी लालसा थी। परन्तु सीता के भाग्य में पुत्रवती होना कहाँ? माता कौसल्या, बहन ऊर्मिला,

महाराज, ओह। अब नहीं सहा जाता। आप सब ने अभागिनी सीता को भुला दिया।

(मूर्च्छित हो जाती है)

[दो ऋषिकुमार आते हैं]

दोनों ऋषिकुमार—अरे! यह कौन स्त्री यहाँ मूर्च्छित पड़ी है, अथवा मर गई है? (झुककर देखते हैं)

एक—अभी जीवित है।

दूसरा—साँस चलता है।

पहला—आश्रम की तो नही है। कोई नगर की स्त्री ज्ञात होती है।

दूसरा—किसी बड़े घर की राजलक्ष्मी मालूम देती है। गहने नहीं हैं पर कैसा रूप और तेज है।

पहला—बिल्कुल मूर्छित है।

दूसरा—अब क्या किया जाय? किसे पुकारें? कौन सहाय करे? तुम जाकर गुरु जी को सूचना दे दो कि एक स्त्री गंगा के किनारे मूर्च्छित पड़ी है। [देखकर] लो, वे गुरुजी स्नान करके इधर ही आ रहे हैं।

[वाल्मीकि आते हैं]

दोनों—गुरु जी। प्रणाम।

गुरु वाल्मीकि—चिरजीव रहो पुत्रो। यहाँ तुम क्या कर रहे हो?

दोनों ऋषिकुमार—महाराज, यह स्त्री यहाँ मूर्च्छित पड़ी है।

गुरु वाल्मीकि—कौन है यह? अरे यह तो रघुकुल की राजरानी सीता है।

[कमण्डलु से जल लेकर छींटे देते हैं]

दोनों ऋषिकुमार—ये महारानी सीता है?

सीता—[[illegible]] आह ! वह सपना भी टूट गया। [देखकर] आप कौन हैं ऋषिकुमार ? [[illegible] को देखकर] और आप ?

दोनों ऋषिकुमार—भगवती सीता, ये हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकि हैं।

सीता—ऋषिवर, प्रणाम। अभागिनी सीता को कहाँ आश्रय मिलेगा ? इसके पापी प्राण तो इसके शरीर से बहुत ही मोह रखते हैं।

वाल्मीकि—बेटी, दुनिया गोरख-धन्धा है और जीवन भी। अब तुम धैर्य धारण करके भाग्य के विधान को देखो। पुत्रो, देवी को आश्रम में ले जाकर भगवती आत्रेयी को सौंप दो। उनसे कह देना कि यह रघुकुल-राजरानी सीता हैं, इनको कोई दुःख न हो।

दोनों ऋषिकुमार—जो आज्ञा गुरुदेव। चलिए महारानी जी।

[जाते हैं]

तीसरा दृश्य

[स्थान—वन में मुनि वसिष्ठ का आश्रम।
गुरु वसिष्ठ और श्रीराम बातें कर रहे हैं]

वसिष्ठ—रामभद्र, तुम किस लिए अब मेरे पास आये हो ?

राम—गुरुदेव, दास अब और कहाँ जाय ? आप कहिए, मैं क्या करूँ ?

वसिष्ठ—कठिनाई क्या है रामभद्र, ?

राम—गुरुदेव, छोटे छोटे राजाओं की मनमानी से प्रजा में शान्ति नहीं रही है।

वसिष्ठ—तब ?

राम—एक-छत्र राज्य की बड़ी आवश्यकता है।

वसिष्ठ—तुम प्रतापी राजा हो राम। एक-छत्र राज्य की स्थापना करो।

राम—गुरुदेव, मैं अकारण किसी पर चढ़ाई नहीं करूँगा।

वसिष्ठ—तब एक बात है।

राम—कौन बात गुरुदेव ?

वसिष्ठ—अश्वमेध यज्ञ करो।

राम—अश्वमेध।

वसिष्ठ—हाँ, रामभद्र।

राम—गुरुदेव।

वसिष्ठ—क्यों राम, क्या हुआ ?

राम—महाराज, मैं भाग्यहीन, पत्नी और पुत्ररहित राजा हूँ। यज्ञ का अधिकारी नहीं।

वसिष्ठ—रामभद्र, तुम दूसरा विवाह करो। पत्नी और पुत्र तुम्हें प्राप्त होंगे।

राम—हाय ! गुरुदेव ! आप यह क्या कह रहे हैं ! [रोते हैं]

वसिष्ठ—रोते हो रामभद्र ?

राम—भगवन्, आपने मेरा घाव छू दिया।

वसिष्ठ—तुम तो बालक की भाँति अधीर हो गये वत्स।

राम—गुरुदेव, सीता को त्यागे आज अठारह वर्ष होते हैं।

वसिष्ठ—होते तो हैं।

राम—इन अठारह वर्षों में मैंने सीता की सुध भी नहीं ली।

वसिष्ठ—हुआ तो ऐसा ही है।

राम—मैंने ऐसी निठुराई करके अपने ही ऊपर अत्याचार किया।

वसिष्ठ—अपने ही ऊपर ?

राम—आप लोगों को भी विशेष कष्ट हुआ है। अठारह वर्ष से अयोध्या सूनी पड़ी है। भगवती अरुन्धती, आप, माताएँ, भरत, माण्डवी देवी और उनके साथ सहस्रों पुरवासी और राज-कर्मचारी जब से अयोध्या छोड़ कर गये हैं मेरा जीवन नरक बन गया है। अब इस पापी को और पाप करने की आज्ञा न दीजिए, गुरुदेव !

वसिष्ठ—और कौन सा, राम ?

राम—यही, दूसरा विवाह करने का।

वसिष्ठ—धन्य रामचन्द्र, धन्य हो तुम ! धन्य तुम्हारी निष्ठा !! धन्य तुम्हारा प्रेम !!!

राम—तो महाराज, अश्वमेध नहीं हो सकेगा ?

वसिष्ठ—हो सकेगा राम। सीता की सोने की मूर्ति तुम्हारी अर्धाङ्गिनी होगी।

राम—सीता की सोने की मूर्ति ?

वसिष्ठ—हाँ, रामभद्र।

राम—[उत्तेजित होकर] महाराज .

वसिष्ठ—रामभद्र, शान्त हो।

राम—सीता की मूर्ति ?

वसिष्ठ—हाँ, राम।

राम—मेरे अहोभाग्य गुरुदेव । उस मूर्ति मे पवित्रात्मा सीता को तो देख पाऊँगा।

वसिष्ठ—अवश्य। राम, तुम यज्ञ की तैयारी करो।

राम—जो आज्ञा गुरुदेव।

वसिष्ठ—और स्वय महात्मा वाल्मीकि के आश्रम मे जाकर उन्हे न्योता दे आओ।

राम—जो आज्ञा। [सकोच सहित] परन्तु गुरुदेव और सब माताए भी जायें तो अच्छा।

वसिष्ठ—बहुत अच्छा रामभद्र। मैं उनसे कह दूँगा।

राम—तो दास चला। माताओं को देखे आज इतने वर्ष हो गये। उन्हे देखने को जी तरसता है। परन्तु अपराधी राम उन्हे मुँह दिखाने का नहीं रहा।

वसिष्ठ—समय पर सब ठीक हो जायगा, राम। जाओ और अश्वमेध की तैयारी करो।

राम—जो आज्ञा, गुरुदेव। प्रणाम।

वसिष्ठ—कल्याण हो।

[जाते है]

चौथा दृश्य

[महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश माता से बातें करते हैं]

लव—माँ, आज हम तुमसे वह भेद पूछकर रहेंगे।

सीता—कौन-सा भेद लाल ?

कुश—और, नहीं बताओगी तो रूठ जायेंगे, बोलेंगे नहीं।

सीता—क्यों मेरे लाल, दुखिया माँ से रूठोगे ?

लव—तो बता दो आज।

कुश—सब ऋषिकुमार हमें चिढ़ाते हैं।

लव—हँसी करते हैं। कहते हैं—बताओ, तुम्हारे पिता कौन हैं ?

सीता—प्यारे पुत्रो, तुम्हारे पिता महात्मा वाल्मीकि ही तो हैं ?

कुश—नहीं, माँ। वे तो हमारे गुरुदेव हैं।

सीता—बेटे, गुरु ही पिता होता है।

लव—वाह। गुरु जी तो सब के गुरु हैं, पर सब के पिता भी तो और हैं ? हम जानते हैं।

कुश—हमें बहकाओ मत माँ।

सीता—क्यों बेटा, अभागिनी माँ पर विश्वास नहीं करते ?

[आँसू पोंछती है]

लव—रोने क्यों लगीं माँ ? तुमसे जब पिता जी का नाम पूछते हैं, तभी तुम रोने लगती हो।

कुश—रोओ मत माँ। अब हम कभी न पूछेंगे।

सीता—मेरे नयन-दुलारो, तुम्हीं मेरे जीवन-धन और आँखों के उजाले हो। तुम जीते रहो बेटे।

लव—तुम हमारी बड़ी अच्छी माँ हो। हो न माँ ?

सीता—अरे पुत्रो, मैं तो तुम्हारी धाय हूँ—दासी।

कुश—ऐसा न कहो माँ।

सीता—लाल, तुम्हारी माँ तो बड़ी भारी महारानी थीं। उनका बडा प्रताप था। उनके बडे-बडे महल थे। राजधानी थी। हाथी, घोडे, रथ थे।

लव—सच।

सीता—सचमुच बेटे।

कुश—तो हम यहाँ क्यों आ गये माँ?

सीता—भाग्य ले आया लाल।

कुश—तुम्हें भी?

सीता—मुझे तुम्हारे पिता ने त्याग दिया था।

लव—त्याग दिया था?

सीता—हाँ, लाल।

कुश—क्यों माँ?

सीता—बेटा, वे राजा हैं।

कुश—और वे महल मे रहते है?

सीता—हाँ, पुत्र।

कुश—तो हमारे पिता जी है तो?

सीता—हाँ, है।

लव—मैं उनसे नहीं बोलूँगा।

कुश—पिताजी बडे बुरे है।

सीता—ऐसा न कहो लाल। तुम्हारे पिता दया और धर्म के अवतार है।

लव—और माता?

सीता—हाँ, वे—वे—वे—भी।

लव—हमारी माता तुम हो ?

सीता—लाल, मैं तुम्हारी दासी हूँ।

कुश—तुम हमारी मां हो।

सीता—यह दुखिया—भिखारिन तुम्हारी मां ? हाय रे! भाग्य।

कुश—मां, तुम फिर रोने लगीं! मुझे बड़ा होने दो। मैं तुम्हारे लिए एक महल बनवाऊँगा।

लव—और मैं हाथी घोड़े ले आऊँगा।

[नेपथ्य में ऋषिकुमार कोलाहल करते आते हैं]

एक ऋषिकुमार—कुमार, घोड़ा एक पशु होता है न ? ऐसा सुना था, वह पास यहां आया है।

लव—घोड़ा एक पशु है और वह लड़ाई में काम आता है। कहां देखा तुमने घोड़ा ?

दूसरा ऋषिकुमार—आश्रम के उस पार है। उसकी बड़ी-सी पूँछ है। उसे वह बार-बार हिला रहा है।

तीसरा ऋषिकुमार—उसकी गर्दन बड़ी लम्बी है।

चौथा ऋषिकुमार—पैर में चार खुर हैं।

पांचवाँ ऋषिकुमार—भूख लगने पर घास खाता है।

छठा ऋषिकुमार—आम के बराबर लीद करता है।

सातवाँ ऋषिकुमार—चलो कुमार, उसे पकड़ लें। बड़ा मजा होगा।

लव—चलो फिर। देखें, कैसा वह घोड़ा है।

[सब जाकर घोड़े को देखते हैं]

[घोड़ा हिनहिनाता है]

लव—हाँ, यही है घोड़ा। ठहरो, मैं इसे बांधता हूँ। तुम उसे ढेला मार कर रोको।

सब ऋषिकुमार—अहा-हा। बड़ा मजा है।

[सब चिल्लाते है। घोड़ा हिनहिनाता है।]

[सिपाही आते हैं]

एक सिपाही—अरे। किसे अपनी जान भारी हुई है, जिसने अश्वमेध का घोड़ा रोका है ? तुमने क्या महाप्रतापी राजा राम का नाम नहीं सुना ? जिन्होंने रावण का वंश नाश कर दिया उनसे जो वीर लोहा ले, वह यह घोड़ा रोके।

कुश—अरे। यह तो बड़े घमंड की बातें करता है। सिपाहियो, क्या तुम्हारे महाराज-सा कोई शूर ही नहीं है ?

दूसरा सिपाही—अरे ऋषिकुमार, क्यों गाल बजाते हो। कुमार चन्द्रकेतु इस घोड़े की रखवाली कर रहे है। वे जब तक आवें, तब तक घोड़े को छोड़ दो और यहाँ से खिसक जाओ। इसी मे भला है।

सब ऋषिकुमार—छोड़ दो कुमार, इनके चमकीले हथियारों से हमे डर लगता है। चलो, हम सब छलांगें मारते आश्रम को भाग चलें।

लव—(हँसकर) क्या चमकीले हथियारों से हम डरते हैं ? ठहरो, तनिक। देखो इस मेरे धनुष के खेल।

(धनुष पर डोरी चढ़ाता है)

सब ऋषिकुमार—अरे, कुमार को क्रोध आ गया ?

दूसरे—और वे बाणों की वर्षा करने लगे।

[सिपाही घायल होकर चिल्लाते हैं और कोलाहल मचता है। सावधान रहो। वे रथ दौड़ाते हुए चन्द्रकेतु आ रहे है।]

[कुमार चन्द्रकेतु आते है]

चन्द्रकेतु—आर्य सुमन्त्र, हमारा रथ उसी वीर ऋषिकुमार के सामने ले चलिए। अरे, यह तो रघुवंशियों की भाँति लड़ रहा है!

सुमन्त्र—क्या कहते हैं। यह ऋषिकुमार महावीर है।

चन्द्रकेतु—परन्तु उस अकेले पर इतनों का इकट्ठा होकर चढ़ाई करना तो ठीक नहीं।

सुमन्त्र—पर वे सब उसका कर ही क्या सकते हैं? वह तो सब को मार डाल रहा है। देखो वह हमारी सेना भागने लगी!

चन्द्रकेतु—तो शीघ्रता कीजिए आर्य। हमारा रथ जल्द वहाँ पहुँचाइए।

सुमन्त्र—अच्छा, कुमार! लो, वह वीर तुम्हारी ललकार सुन यहीं आगया।

लव—कुमार चन्द्रकेतु, लो मैं आगया।

[कोलाहल मचता है]

लव—अरे देखो, ये हारे हुए सेनापति फिर मेरे सामने आने का साहस करते हैं।

चन्द्रकेतु—ठहरो ऋषिकुमार। उनकी चिन्ता मत करो। लो मैंने उन्हें रोक दिया। पर तुम पैदल और मैं रथ पर, यह ठीक नहीं। मैं भी नीचे आता हूँ। आर्य, रथ रोक दीजिये। मैं पैदल लड़ूँगा।

सुमन्त्र—किसलिए कुमार?

चन्द्रकेतु—इस वीर ऋषिकुमार का आदर करने के लिए ऋषिकुमार, यह रघुवंशी चन्द्रकेतु आपको प्रणाम करता है।

लव—कुमार, इतना आदर दिखाने की क्या आवश्यकता है? आप रथ पर चढ़े ही अच्छे लगते हैं।

चन्द्रकेतु—तो आप भी एक रथ पर चढ़िए।

लव—अरे, हम वनवासी रथ पर चढ़ना क्या जानें?

सुमन्त्र—धन्य ऋषिकुमार। आपका विनय धन्य है।

लव—कुमार, सुना है महाराज राम को अभिमान नहीं है। फिर उनके सेवक क्यों अभिमान करते हैं ?

चन्द्रकेतु—अश्वमेध के घोडे को रोकना रार ठानना ही है। जो लडना चाहे, वही घोडे को रोके।

लव—तो क्षत्रिय तो पृथ्वी पर और भी हैं।

सुमन्त्र—ऋषिकुमार, तुम छोटे मुँह बडी बात कहते हो।

लव—(हँस कर) श्रीमन्, परशुराम को तो महाराज ने मीठी-मीठी बातों ही से जीता था।

चन्द्र०—अरे! महाराज की निन्दा करता है।

लव—अरे! मुझ ही को आँख दिखाता है ?

चन्द्र०—अब हमारा फैसला हथियार करेंगे।

लव—तब लो हथियार।

[दोनों लडते हैं। राम आते हैं और दूर ही से पुष्पकविमान से उतर कर पुकारते हैं]

राम—पुत्रो, लडाई रोक दो, लडाई रोक दो।

चन्द्र०—अरे, महाराज स्वय ही पधार रहे है।

लव—सच, तब चलो। पूज्य चरणों मे प्रणाम करे।

राम—अरे पुत्रो, तुम्हे घाव तो नही लगा।

चन्द्र०—नहीं महाराज, अब हम मित्र हो गये।

राम—बहुत अच्छा किया। तुम्हारा मित्र तो वीर-धीर दीखता है।

लव—महाराज, वाल्मीकि का शिष्य लव आपको प्रणाम करता है।

राम—आओ कुमार, मेरी गोद मे बैठो। तुम्हे देखकर तो जैसे प्राण हरे हो गये। तुम्हारा नाम क्या है ?

लव—दास का नाम 'लव' है। हाय! श्रीमहाराज तो मुझसे इतना प्यार करते हैं और मैं लड़ बैठा।

राम—पुत्र, तुम्हारी वीरता तुम्हें ही सजती है। कुमार! तुम किस भाग्यवान के पुत्र हो?

लव—महाराज, हम भगवान वाल्मीकि के पुत्र हैं।

राम—तो तुम अकेले हो?

लव—जी, नहीं। बड़े भाई कुश हैं। भाई कुश, स्वयं महाराज रघुपति यहाँ विराजमान हैं। इन्हें प्रणाम कीजिए।

कुश—ये ही रामायण के नायक महाराज हैं। महाराज, वाल्मीकि-पुत्र कुश आपको प्रणाम करता है।

राम—अरे, मेरे दाहिने अंग फड़कने लगे। इन बालकों को देख कर तो इन्हें छाती से लगाने को जी चाहता है। आओ कुमारो, इधर हमारी गोद में बैठो।

कुश—महाराज, धूप बहुत तेज है। आइए, इस साल के पेड़ की छाँह में बैठिए।

राम—अच्छा पुत्र, चलो। आह, इन बच्चों की मुखाकृति देवी सीता से कितनी मिलती है। हाय! मेरे बेटे भी इतने बड़े हुए होते। पर अब इन बातों से क्या। [ठंडी साँस लेकर] हाय! प्यारी सीता!

लव—महाराज क्या सोच रहे हैं? हैं! यह क्या? महाराज तो रोते हैं।

राम—[आँसू पोंछकर] कुछ नहीं पुत्रो, कुछ नहीं। यह अभागा मन तो यों ही अधीर हो जाता है। हाँ, यह तो कहो। सुना है महात्मा वाल्मीकि एक काव्य रच रहे हैं, रामायण।

लव—हाँ, महाराज उसमें श्रीमहाराज और देवी सीता का ही तो वर्णन है।

राम—हाय ! देवी सीता !

[एक ऋषिकुमार का प्रवेश]

ऋषिकुमार—(दूर से पुकारकर) अरे मित्रो, तुम नहीं जानते। आज आश्रम में बड़े-बड़े अतिथि आये हैं। गुरुजी ने हमें छुट्टी कर दी है।

लव—कौन कौन आये हैं ?

कुश—(देखकर) अरे ! वे सब तो इधर ही आ रहे हैं।

लव—पर इन सब के आगे चीथड़ा लपेटे हुए यह कौन है।

राम—(खड़े होकर) ये महात्मा वसिष्ठ हैं। इनके साथ भगवती अरुन्धती और माता कौसल्या भी हैं। हाय ! मुझ पर तो विपत् का पहाड़ टूट पड़ा। अब कहाँ पापी मुँह छिपाऊँ ? अरे पुत्रो, इन गुरुजनों को आगे बढ़कर सत्कार से प्रणाम करो।

(सब कुमार आगे बढ़ते हैं। राम एक ओर चले जाते हैं)

कौसल्या—अहा ! देखो, आज इन ऋषिकुमारों को छुट्टी हो गई है। बेचारे मगन होकर खेल-कूद कर रहे हैं। अरे ! इनके बीच यह कौन देवता के जैसा बैठा था ? कहीं मेरे राम तो नहीं। गुरुदेव, आप तो राम को पहचानते हैं। लो, वे हमें देखकर खिसक गये। हाय ! राम !

वसिष्ठ—रामभद्र ही है। महारानी, तुमने इन दोनों बालकों को भी देखा, जो इनके कन्धे पर हाथ धरे खड़े थे। लो, वे सब इधर ही आ रहे हैं।

कौसल्या—गुरुदेव, ये दोनों बालक कौन हैं ? यह तो क्षत्रिय बालक दीख पड़ते हैं। पीठ पर तरकस, हाथ में धनुष, सिर पर जटा, मजीठ की रँगी धोती, मूँज की करधनी, पीपल का डंडा।

वसिष्ठ—ये क्षत्रियकुमार ही हैं महारानी।

कौसल्या—राम जब इतने बड़े थे तो बिलकुल ऐसे ही थे। राम ! राम !

वसिष्ठ—चलो, महारानी। हम सब महात्मा वाल्मीकि के पास चलकर अपने सन्देह दूर करें।

कौसल्या—चलिए गुरुदेव।

(सब जाते हैं)

पाचवां दृश्य

(सीता और उसकी सखी वासन्ती । वाल्मीकि का आश्रम)

सीता—अरी सखी, सुना है वे आये है ।

सखी—कौन देवी ?

सीता—वही मेरे जीवन धन, महाराज रघुपति ।

सखी—सुना तो मैंने भी है । तो देवी, तुम गगा में स्नान करके नई मृगछाला पहन लो । लाओ, मैं तुम्हारे उलझे बालों को गूँथ दूँ, फूलों से सजा दूँ ।

सीता—क्यों सखी ? यह किस लिए ?

सखी—देवी, एक बार आँख भरके तुम्हे वनदेवी के रूप मे देखना चाहती हूँ । हाय ! मुरझाई हुई बेल की तरह तुम्हारी सोने की देह

सीता—सखी, यह देह आज मैं गगा मे विसर्जन करूँगी।

सखी—ऐसी बात न कहो देवी । तुम्हारा यह पुण्य शरीर

सीता—यह पापी शरीर

सखी—नहीं, नहीं । पति और पुत्र के रहते ऐसा न कहो । पर महाराज को ऐसा नहीं करना चाहिए था ।

सीता—प्यारी सखी, रघुकुल-कमल की निन्दा मत करो ।

सखी—धन्य सती । आज भी तुम्हारे मन मे उनका वैसा ही प्यार है ।

सीता—प्यार की अमृतधारा पीकर अठारह वर्ष से जी रही हूँ सखी । पर आज मैं मरूँगी ।

सखी—चुप रहो देवी । ऐसी बाते न करो ।

सीता—मैं कैसे उन्हें पापी मुँह दिखाऊँगी, मैं अनाथ हूँ।

सखी—महाराज के रहते।

सीता—हाय रे! मेरा भाग्य। [रोती है]

[राम आते हैं]

राम—यहीं तो देवी सीता को लक्ष्मण छोड़ गया था। हाय! सीता, तुम कहाँ हो?

सीता—अरे! यह तो वही पुरानी पहचानी हुई बोली है। इतने दिनों बाद कानों में आज फिर अमृतवर्षा हुई।

सखी—देवी सँभल जाओ। वे उधर ही आ रहे हैं।

सीता—हाँ, वे ही हैं। कितने दुबले हो गये हैं। मुँह पीला हो गया है। बाल पक गये हैं। सखी, मेरा सिर घूम रहा है।

राम—हाय! सीता, प्यारी सीता।

सीता—हाय! आर्यपुत्र।

राम—अरे! मेरे सुख-दुःख की संगिनी जनकदुलारी सीता ...

[मूर्च्छित हो जाते हैं]

सीता—अरी सखी, वे तो इस अभागिनी को पुकारते पुकारते मूर्च्छित हो गये।

सखी—चलो, देवी! उनका कुछ यत्न करें।

सीता—सखी, मेरा हाथ पकड़ कर चलो। मेरी आँखें आँसुओं से अन्धी हो रही हैं और मेरे पाँव लड़खड़ा रहे हैं।

[दोनों मूर्च्छित राम के पास जाती हैं]

सखी—देवी, महाराज के शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरो।

राम—[मूर्च्छा में] चन्द्रमा नहीं है। दूर तारे टिमटिमा रहे हैं। सन्नाटा छा रहा है। नगरवासी सो रहे हैं। पर उनके राजा की आँखों में नींद नहीं है। कितने दिन बीत गये। सीता कहाँ हो? [जोर से] आओ सीता, आओ।

सीता—अरे ! महाराज मूर्च्छा में बड़बड़ा रहे हैं । सखी, अब क्या करूँ ?

राम—सोने की सीता, तुम हँसती-रोती भी तो नहीं । क्या तुम क्रुद्ध हो ? कुछ पता नहीं । हँसो, हँसो प्राणेश्वरी । मेरी सोने की सीता हँस दो तनिक ।

सीता—अरी सखी, आर्यपुत्र का यह विलाप तो सहा नहीं जाता । कैसे इन्हें चैतन्य करूँ ?

सखी—देवी, धीरे-धीरे महाराज के शरीर पर हाथ फेरो ।

राम—अहा ! यह किसने छुआ ? प्राण हरे हो गये । सूखते धान पर पानी पड़ा । बोलो सीता देवी, बोलो ! एक बार वह मीठा स्वर सुनने को तरस रहा हूँ । अरी प्रियवदा सीता !

सीता—इतने दिन बाद सुध ली प्राण-धन ! नाथ, अभागिनी दासी तो चरणों ही में है ।

राम—कौन बोला यह ? कितना मधुर ! कितना प्रिय !

सीता—[रोती हुई] अरी सखी, आर्यपुत्र होश में आ रहे हैं । अब चलो यहाँ से ।

राम—वही—वही—वही—स्वर है ! सीता प्रिये , सन्ध्या हो रही है । दुनिया सुनहरी रँग गई है । उस बरगद की डालियों की जड़ें धरती को चूम रही हैं । कौन पक्षी गा रहा है ? पम्पा-सरोवर यही तो पंचवटी है । यहीं तो हमारी कुटिया थी । उसमें सीता रहती थी—सीता ! ओ देवी सीता !

सीता—हाय ! प्राणेश्वर, यह अधम दासी जीती-जागती यहीं है ।

राम—कहाँ ? कौन ? तुम ? मैं ? कहाँ

सखी—महाराज, सावधान हूजिए । देवी सीता यहीं हैं ।

राम—देवी सीता ?

सखी—हाँ, महाराज।

राम—सीता

सखी—हाँ, महाराज। देखिए, वे मूर्च्छित होने लगीं।

राम—देवी, तुम्हारा यह मलिन वेश। उलझे हुए बाल। तो तुम देवी सीता हो ?

सीता—यह अभागिनी आपकी दासी सीता है।

राम—जनक की राजदुलारी ?

सीता—हाँ, आर्यपुत्र।

राम—रघुकुल की राजलक्ष्मी।

सीता—अभागिनी सीता।

राम—हाय, प्रिये, मेरे रहते तुम्हारी यह हालत हो गई! अरे! देवी का यह रूप देखने से पूर्व ही मेरी आँखें फूट जायँ।

सीता—महाराज, उस जन्म में दर्शन हो गये। जीवन सफल हो गया। अरे! वे भगवती अरुन्धती और माता कौसल्या इधर ही आ रही हैं।

राम—उन्हें यह अधम राम कैसे मुँह दिखायेगा ?

[कौसल्या आती है]

कौसल्या—भगवती, वे रामभद्र ही हैं न ? अब तो पहचाने भी नहीं जाते। अरे पुत्र राम!

अरुन्धती—महारानी, यहाँ सुभागी सीता भी हैं।

कौसल्या—तो सचमुच पुत्र और बहू में मेल हो ही गया।

अरुन्धती—हाँ, महारानी। आओ, रामभद्र का सकोच दूर करें।

[आगे बढ़कर जाती है]

राम—माता, यह कुपुत्र राम आपके चरणों मे प्रणाम करता है।

कौसल्या—रामभद्र, मेरे पुत्र, आओ मेरी छाती ठढी करो [सीता को देख कर] अरी बेटी सीता, मेरी सुलक्षण बहू, अरी तपस्विनी, तू धन्य है।

सीता—माताजी, आपकी दासी सीता प्रणाम करती है।

कौसल्या—सुहागिन रहो। रामभद्र, तो तुमने सीता को ग्रहण किया न पुत्र ?

[एक ऋषिकुमार आता है]

ऋषिकुमार—आप सबको प्रणाम। विदेहराज जनक आप लोगों से मिलने आ रहे हैं।

कौसल्या—हाय। मैं कैसे उस राजर्षि को मुँह दिखाऊँगी ?

राम—माता ! अपराधी तो मै हूँ। मैंने ही जनकदुलारी को अनाथ बनाया था।

(जनक आते हैं)

जनक—भगवती अरुन्धती, सीरध्वज जनक आपको प्रणाम करता है। (कौसल्या को देखकर) अरे। क्या प्रजा-रजन करने वाले राजा की माता भी यहीं हैं ? और मेरी बेटी सीता भी ? हाय। मेरी प्यारी बच्ची।

अरुन्धती—महाराज, महारानी कौसल्या ने तो इसी क्रोध से अठारह बरस तक रामभद्र का मुँह नहीं देखा। रामभद्र ने भी अपवाद के डर से यह काम किया था।

कौसल्या—हाय।

(मूर्च्छित हो जाती है)

अरुन्धती—(घबराकर) महारानी मूर्च्छित हो गईं।

जनक—मैंने बहुत कठोर बात कह दी, बुरा किया। यह महात्मा दशरथ की पत्नी रानी सती हैं। प्यारे मित्र दशरथ, तुम्हीं स्वर्ग में अच्छे रहे। हम यहाँ दुःख भोग रहे हैं।

कौसल्या—(ध्यान करके) बेटी जानकी जब तू नई बहू बनकर महल में आई थी, उस समय तेरा हीरे मोतियों से सजा हुआ हँसता-मुख मुझे याद है। अरे, स्वर्गवासी तो तुझे अपनी कन्या ही कहा करते थे। आज हमारे रहते तेरी यह दशा हो गई।

अरुन्धती—महारानी, धीरज धरो। अन्त में सब भला होगा।

कौसल्या—भगवती, अब उसकी क्या आशा है।

(ऋषिकुमार आते हैं)

ऋषि०—सबको प्रणाम। आप सबको गुरुदेव वाल्मीकि याद करते हैं। वहाँ महामुनि वसिष्ठ भी बैठे हैं।

अरुन्धती—चलो रामभद्र। महारानी और विदेहराज, चलो। बेटी सीता, सब कोई महात्मा वाल्मीकि के पास चलें।

राम—चलिए भगवती।

(सब जाते हैं)

छठा दृश्य

(महात्मा वाल्मीकि, वसिष्ठ और राम, जनक, कौसल्या आदि)

राम—गुरुदेव, आपके चरणों मे अधम राम प्रणाम करता है।

वाल्मीकि—राजा राम, तुम्हारी जय हो। कहो, राज्य मे सब कुशल तो है ?

राम—आपकी दया से सब कुशल है।

वाल्मीकि—सुना है राजन् , तुम अश्वमेध यज्ञ कर रहे हो ?

राम—हाँ, भगवन् , मै आपको न्योता देने आया हूँ।

वाल्मीकि—बहुत अच्छी बात है। हाँ महाराज, इस यज्ञ मे राजा की रानी कौन है ?

राम—सीता की सोने की मूर्ति।

वाल्मीकि—क्या कहा ?

राम—सोने की सीता।

वाल्मीकि—सच ?

राम—सच।

वाल्मीकि—धन्य हो राम।

राम—गुरुदेव, मैं पत्नी-द्रोही धन्य हूँ ? मै महापापी हूँ।

[लव-कुश आते हैं]

लव—गुरुदेव, हमसे अपराध हो गया।

वाल्मीकि—कैसा अपराध पुत्रो ?

लव—हमसे इन पूज्य अतिथियों का अपमान हो गया।

वाल्मीकि—कैसा अपमान बच्चो ?

लव—हमने अनजाने अश्वमेध का घोडा पकड लिया और कुमार चन्द्रकेतु से युद्ध ठान बैठे।

राम—वत्स, मैंने तुम्हारा यह अपराध क्षमा कर दिया [वाल्मीकि से] कुलपति, ये दोनों कुमार किस कुल के हैं। इन्हें देखकर तो हृदय उछलता है।

वाल्मीकि—महाराज राम, ये तुम्हारे ही समान उच्च कुल के हैं।

राम—हूँ, इनका भाग्यवान पिता कौन है गुरुदेव ?

वाल्मीकि—अयोध्यापति राम।

राम—[उत्तेजित होकर] क्या कहा गुरुदेव ?

वाल्मीकि—शान्त हो रामभद्र। ये दोनों तुम्हारी ही सन्तान हैं। पुत्र लव कुश, अपने प्रतापी पिता को प्रणाम करो।

राम—मेरे पुत्र, मेरे पुत्र, आओ बेटो। छाती से लग जाओ। हाय रे राजधर्म। सब का अपनी सन्तान और बच्चों पर अधिकार होता है, केवल राजा का नहीं होता।

वाल्मीकि—तो रामभद्र, तुमने अपने बालकों को तो ग्रहण किया ना ?

राम—हाँ, गुरुदेव।

वाल्मीकि—और सीता को ?

राम—सीता, सीता, सती सीता, हाय।

[रोते हैं]

वाल्मीकि—राम तुम्हें क्या सङ्कोच है ?

राम—गुरुदेव, जो कारण तब था, वही तो अब भी है।

वाल्मीकि—रामभद्र, सीता पर यह बड़ा अन्याय है।

राम—गुरुदेव, इस राजधर्म पर ही धिक्कार है।

वाल्मीकि—[क्रोध से] अरे राजा, यह सती अठारह वर्ष तक तुम्हारे लिए रोती रही है। चातक की भाँति तुम्हारे नाम की

रट लगा रही है। अरे। इसके पीले और उदास मुख की ओर तो देखो।

जनक—हाय। बेटी।

कौसल्या—इतने बडे राजा की रानी वीर-पुत्रों की माता रघुकुल की वहू की आज यह दुर्दशा।

राम—माता ! मैं राज-धर्म मे बँधा हूँ। जब तक प्रजा को विश्वास

जनक—क्या कहा ?—विश्वास ? अरे। मेरी बेटी अविश्वस्त।

सीता—पिताजी। ठहरिए। आर्यपुत्र को मैं परीक्षा दूँगी।

राम—और वह परीक्षा यहाँ बैठे गुरुजनों की दृष्टि मे ठीक हुई तो मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा।

सीता—सावधान होकर देखे, मैं परीक्षा देती हूँ।

[आकाश में ध्वनि होती है—सती सीता की जय।]

सीता—माता वसुन्धरे, यदि मैंने आज तक पति के चरणों को छोड अन्य किसी का ध्यान नही किया, कभी स्वप्न मे भी पति पर क्रोध नहीं किया, यदि मैं पवित्र सती हूँ तो वसुन्धरे माँ, तुम अभी फट जाओ और मुझे अपनी गोद मे ले लो।

[बडे जोर से गडगडाहट होती है। भूचाल
आता है, सब चिल्लाते हैं। धरती फटती
है। सीता धरती में समा जाती है]

बाधा—रुकावट
२६ उद्यत—तैय्यार
निष्कटक—(बिना काटे) बिना विघ्न
३१ निपुण—चतुर
प्रवेश—अदर आना
३२ कातर—अधीर
अप्रतिहत—अक्षुण्ण, समूची
षड्यन्त्र—साजश
आदेश—आज्ञा
आग्रह—हठ
दर्प—घमंड
उपेक्षा—अनादर
३४ म्लान—कुम्हलाया हुआ
मैथिली—मिथिला की राजकुमारी, सीता
उपहार—भेंट

पश्चात्ताप

४२ डलिया—टोकरी
औकात—सामर्थ्य, कदर
४३ बामन—ब्राह्मण
व्यवस्था—विधान
४५ रोष—क्रोध
नेपथ्य—परदे का पिछला भाग
समदरसी—सब को एक समान देखने वाला
वधिक—हत्यारा
पारस गुन करत खरो—पारस पत्थर का काम है लोह को सोना बना देना, वह लोहे के गुण अवगुण नहीं देखता।
४६ व्यक्ति—पुरुष
चिकित्सा-विधि—इलाज का तरीका
हीन—कम, रद्दी
आराध्य—पूजा के योग्य
निठल्ले—निकम्मा
४८ रामबाण—राम के बाणों की तरह प्रभाव वाली
५१ जोखम—मुसीबत
आजीविका—रोजी
आंदोलन—हल-चल
५२ देखते सब आकता है—कोई विरला ही जीवन का मूल्य समझ पाता है
बत्तिया हम जलते रहेंगे—संसार रूपी दीपक में हम बत्ती की तरह जलते जायेंगे।
खलते—बुरे लगते
५३ भू—पृथ्वी
नभ—आकाश
५७ चिह्न—निशान
५६ पटाक्षेप—परदा गिरना

रजनी

६५ सरकार—मूर्त रूप में
गौरवर्ण—सफेद
अन्य—दूसरे
प्रवास—परदेश
परिजन—कुटुम्ब, सम्बन्धी
अपेक्षाकृत—उससे मुकाबले में
६६ कोर—किनारे
६७ महफिल—सभा

६८ प्रोसैशन—जलूस
७० तिरस्कार—अनादर, फटकार
मर्यादा—सीमा
शासन—नियंत्रण प्रभुता
७१ कल्पना—अनुमान, विचार
७६ टैंट—तम्बू
मर्सराइज्ड—आधा रेशम आधा सूत
स्कार्फ—दुपट्टा
ग्लव्स—दस्ताने
मलनर—लगा हुआ
कार्डिजेन—स्वैटर
८१ सहमत—एक मत का
परिस्थिति—अवस्था
८३ समाज के बंधन हैं—समाज के बंधन में पड़कर वह स्वतन्त्रता नहीं रहता।
सोशल आर्डर—समाज-विधान
८४ एस्केप—बचकर भागना
८६ अंतर—फर्क
सिद्धांत—नियम
८८ एकांत-सेवी—अकेला रहने वाला
मेरे नाम को सार्थक कर दिया—मुझे आनंद दिया
८९ आज यह यों ही रही बोझ बनकर—इसका प्रयोग नहीं किया
९८ अस्थिरता—चंचलता।
१०१ आफ करना—बुझाना।
१०३ भैरवी—पार्वती देवी
१०४ रक्त—लहू

विदुषी—विद्यावती
१०५ क्षितिज—आकाश और पृथ्वी के मिलने का स्थान

गिरती दीवारें

११३ विभिन्न—अनेक प्रकार के
पूर्वज—बाप दादा
वातावरण—मौसम आदि
लक्ष्य—निशाना
परम्परा—मर्यादा
कुलपति—कुल का बड़ा
शिथिल—ढीला
११४ क्रमशः—बारी बारी
११५ काका—चाचा
सहसा—अचानक
११६ प्रथा—रीति-रिवाज
११८ लक्षण—चाल-ढाल
चैतन्य—होशियार
भरसक—पूरी पूरी
निराहार—बिना खाये पिये
११९ यथार्थ—असली
कोषाध्यक्ष—खजांची
प्रपितामह—परदादा
निर्माण—बनाना
१२० अध्यापक—टीचर
अमुक—फलां
संख्या—नम्बर
१२१ दुविधा—अनिश्चय
गर्व—मान
१२२ सुविधा—आसान
वयस—उम्र

अभिभूत—व्याकुल
१२३ तर्क—दलील

देशभक्त सम्राट् पुरु

१३१ शिविर—छावनी
विलास-सामग्री—ऐश का सामान
आडम्बर-रहित—तड़क भड़क के विना
नरेश—राजा
आकांक्षा—प्रबल इच्छा
वीर-प्रवर—वीर वंश वाले
धृष्टता—ढिठाई
विद्वेष-वश—शत्रुता के वश में होकर
१३२ आक्रमण—चढ़ाई
अपर्याप्त—नाकाफी
निर्णय—फैसला
विभीषिका—डरावा
आमंत्रित करना—बुलाना
उपयुक्त—उचित
१३३ द्वंद्व युद्ध—दो का दंगल
भावना—विचार
१३४ आततायी—अत्याचारी
पथ—रास्ता
प्रतिशोध—बदला
विश्व-विजय—ससार को जीतना
१३५ विश्व-विद्यालय—यूनिवर्सिटी
दीक्षान्त—शिक्षा समाप्ति का उत्सव
आशंका—भय
१३६ तट—किनारा
१३७ कमनीयता—सुंदरता
भव्यता—शोभा
व्यापक रूप में—चारों ओर फैली हुई
परिचित—जान-पहचान
प्रस्तुत—मौजूद
रणकुशल—लड़ाई में चतुर
१३८ अभिवादन—नमस्कार
आदर्श—ऊँचा निशान
नैतिकता—नीति के अनुसार चलना
उद्धत—अक्खड़
अपशब्द—गाली
१३९ प्रतीक—चिह्न
अनुमान—अंदाजा
वेग—जोर
चुनौती—चैलेंज
विलम्ब—देर
१४० रक्तिम—लाल
मद—नशा
१४१ वंशानुगत—वंश की परंपरा में
न्याय-संगत—न्याय के अनुसार
नियंत्रण—शासन, काबू
अभिसार—पंजाब के एक प्रांत का नाम
विरत—विमुख
१४२ पराजय—हार
सहज—आसान
गज—हाथी
१४३ असमर्थ—अयोग्य
अधिपति—मालिक
परास्त, पराजित—हारा